महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा

(द्वितीय एवं तृतीय खण्ड)

पृष्ठ संख्या 001-100 तक

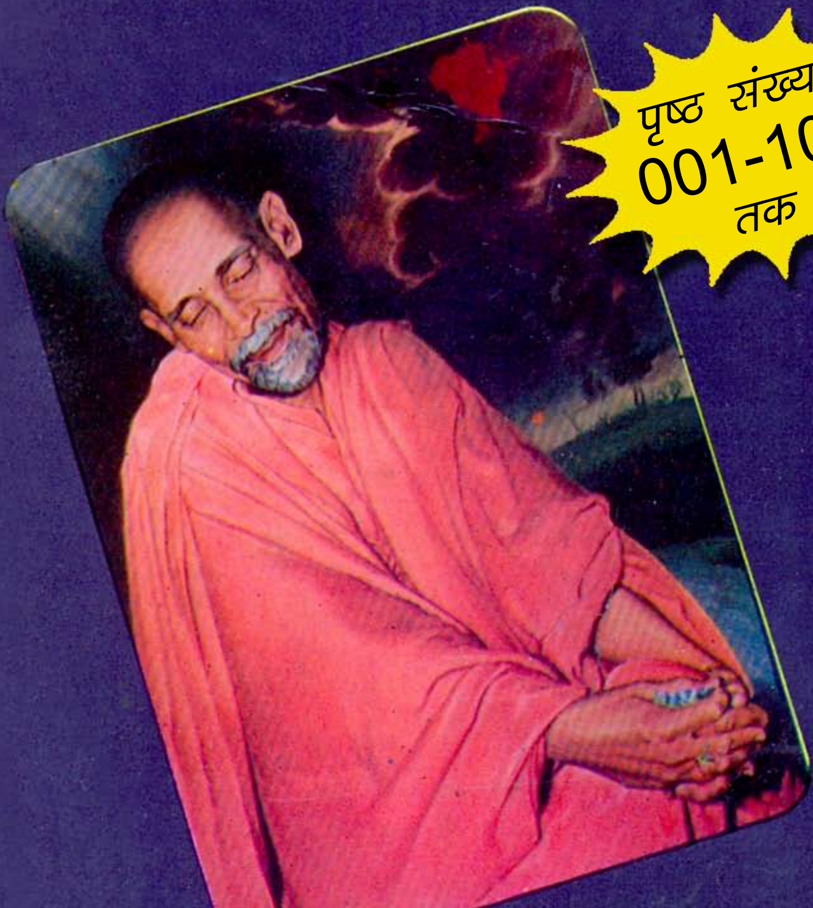

साधु कृष्णप्रेम

महाभाव-दिनमणि

श्रीराधाबाबा

(तृतीय खण्ड)

(मातृसाधना)

विषय :

१. गुरुवरण
२. महात्रिपुरसुन्दरीका संक्षिप्त परिचय
३. भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी साधनाका प्रयोजन
४. प्रातःस्मरण
५. भगवती पराम्बाका ध्यान एवं स्तुति
६. त्रिपुरसुन्दरीमानसपूजास्तोत्रम्
७. श्रीपुर वर्णन
८. महायागक्रम (भावोपनिषद्)
९. पुष्पाञ्जलि मंत्र
१०. पू. राधाबाबाकी तंत्रसाधनाके मुख्य स्तोत्र
११. दुर्वासा ऋषिका दर्शन
१२. न्यासविद्याके परमाचार्य श्रीराधाबाबा
१३. शक्तिसाधना संबंधी प्रश्नोत्तर
१४. पू. श्रीराधाबाबाको पराम्बाका साक्षात्कार
१५. व्रजरज उडि मस्तक लगै

भगवती ललिताम्बाकी आरती

जय जय जगदम्ब राजराजेश्वरि ललिते ।
शरणागत भक्त हेतु चतुर्वर्ग फलिते ।।

अमृतोदधि–सुरतरुवृत मणिद्वीप-नीप-वितत।
चिन्तामणिधाम रत्नवेदि समुज्ज्वलिते ।।

शिवाकारमंचोपरि परशिवपर्यंकोपरि।
कामेश्वरअंकोपरि राजति रतिकलिते ।।

उद्यत्-दिनकर-सहस्त्र शीतकिरण कोटि मिश्र।
निज तनु निरवधि अजस्त्र चिद्घनरस-गलिते।।

केशकुसुम मौक्तिमाल-ग्रथित बालचन्द्रभाल।
त्रिनयन करुणा रसाल नासामणिनलिके ।।

अलक-झलक युग कपोल श्रुतिमणिताटंक लोल ।
अरुणारुण नव निचोल मंदहासमिलिते ।।

सिन्दूरारुण शरीर वेदबाहु युद्धवीर।
पाशांकुश धनुषतीर-धृत कृत-रिपुदलिते ।।

मरकतमणि कनकमाल कंचुकि गल मौक्तिमाल।
मणिमय रशना विशाल अंतरीय तुलिते ।।

पद–नूपुर–नख–प्रकाश गजगति-गंजन विलास।
रासेश्वरि दास आस रास-वास वलिते ।।

महाभाव–दिनमणि श्रीराधाबाबा

(तृतीय खण्ड)

(पत्राचार एवं मातृसाधना)

प्रथम अध्याय

(अन्य लोगोंसे पत्राचार)

१) श्रीहनुमानजी ठर्ड
२) श्रीरामेश्वरजी मुकलानिया
३) श्रीजयदयालजी कसेरा
४) श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया

विषय

१) महापुरूषोंकी महिमाका ज्ञान
२) शुद्ध अन्नसे ही शुद्ध मन संभव है
३) भगवान् कृपा करते ही हैं
४) जगत्‌को भूलें
५) सन्तके सम्मुख सन्देह नहीं रहते
६) वृत्तियोंको भगवन्मयी बनानेकी साधना
७) प्रभुके लिये द्वार खोलें
८) मना रे, करू माधवसों प्रीत

सार–संक्षेप

अबतक जो भी पापकर्म हमसे हो गये हैं, उन्हें भगवान्‌की कृपा पर छोड़कर, भविष्यमें कोई भी दोष संघटित नहीं हों, इसकी सतत चेष्टा रखनेकी आवश्यकता है । पिता, चाचा, भाई आदि सभी परिवारके गुरुजन पाप करनेकी प्रेरणा देते हैं और वैसा न करनेपर व्यापारिक अर्थ हानिका उत्तरदायी आपको ही समझते हैं, तो इसका उत्तर यही है कि शास्त्रमें यह बात स्पष्टतौर पर आती है कि यदि पिता भगवद्विमुख हो और पापकी आज्ञा दे, तो उसका कहना कदापि नहीं मानना चाहिये।

x x x x

आप अपने हृदयमें तनिक भी चिन्ता नहीं करें, क्योंकि आप भगवदाधीन हैं । जब भगवान् आपके लिये दुःख–क्लेशका विधान रचेंगे, तो उसको सहन करनेकी शक्ति भी अवश्य ही देंगे ।

x x x x

हम यदि सूक्ष्मतासे विचार करें, तो हमें पता लगेगा कि भगवान्‌की कृपाके बिना तो हम श्वास भी नहीं ले पाते हैं । अतः जब हमारे प्राणोंका स्पन्दन भी भगवान्‌की शक्तिसे हो रहा है, हमारी श्वास–प्रश्वास उनकी कृपाशक्तिसे चल रही है, हमारी हृदयकी धड़कन भी उन्हींके संकल्पका फल है, तो फिर विचार करें कि भगवान् हमारे कितने अधिक समीप हैं । यदि प्रभुकी ओरसे हमें असफलता भी मिले, तो चिन्ता नहीं । सफलताकी आकांक्षा सभी प्रााणियोंमें होती है, परन्तु भगवत्प्रेमी सफलताके स्थानपर प्रभुकी रुचिकी जय हो–यही कामना करता है ।

x x x x

यह सत्य,सत्य, परम सत्य है कि भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का संग भगवान्‌के संगकी अपेक्षा भी अनेक अंशोंमें बढकर है । यह भावुकताकी सर्वथा बात नहीं है । वस्तुतः ही भगवान्‌की प्राप्तिकी अपेक्षा सच्चे सन्तकी प्राप्ति बड़ी दुर्लभ है ।

x x x x

।।श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–१

महापुरुषोंकी महिमाका ज्ञान

पत्र–प्रेषक :

परम पूज्य स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज

(प. पूज्य श्रीराधाबाबा)

पत्र–प्रेषिति :

श्रीहनुमानजी ठर्ड, कलकत्ता

लेखन–स्थल	प्राप्ति–सूत्र
भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी	श्रीशिवकिसनजी डागा
हवेली, ग्राम, पो. रतनगढ़, (बीकानेर राज्य)	के पत्र–संग्रहसे
दिनांक : पत्रकी प्रतिलिपिमें कोई तिथि	श्रीमुकुन्दजी गोस्वामी द्वारा
नहीं दी गयी; संभवतः सन् १९४३	की गयी प्रतिलिपि ।

आलोक

श्रीहनुमानजी ठर्ड उन सौभाग्यवान् जीवोंमें से एक थे, जिन्होंने पू. भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी मस्सों (PILES) की अति भीषण कष्टदायक बीमारीमें प्राणप्रणसे सेवा की थी । दिल्लीमें जब पू. भाईजी मरणान्तक रोगाक्रान्त थे और उन्हें अतिशय भीषण शिरोवेदना भी साथ–साथ ही थी, उस समय श्रीप्यारेलालजी डागा और श्रीहनुमानजी ठर्ड, इन दो भाग्यवान् जीवोंने जिस धैर्य, लगन एवं श्रमपूर्वक श्रीभाईजीकी सेवा की थी, उससे स्वामीजी श्रीचक्रधरजी महाराज इनके प्रति अपनेको सदैव उपकृत अनुभव करते थे ।

भैया श्रीहनुमानजी ठर्ड,

आपके मनमें जो ऐसी अभिलाषा जाग्रत हुई है कि भगवान्‌की भक्ति करूँ, इससे उत्तम दूसरी अभिलाषा हो ही नहीं सकती । आज कलियुगमें अल्पआयु, अल्पशक्ति एवं अल्पबुद्धिवाले मनुष्य हैं । हमारी दशा विषय–वारि–मनो–मीनकी

है, अर्थात् हम विषयोंके जलमें मीन (मछली) की तरह पूरे आसक्त हुए जी रहे हैं। विषय–वारि (जल) को छोड़नेकी कल्पना भी हम नहीं कर सकते । हमें लगता है कि यदि हमसे विषय छूट गये तो हमारे प्राण ही नहीं रहेंगे । कलि–मलसे ग्रसित बुद्धिमें इस पावन भक्तिकी अभिलाषाका उदय होना अनन्त जन्मोंके पावन पुण्यकर्मोंका ही फल समझना चाहिये ।

निश्चय ही, भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) जैसे सिद्धसन्तकी सेवा, जो आपसे बनी है, उसका ही यह सुफल है कि आपमें ऐसी शुद्ध वृत्तिके बीज पड़े हैं।

परन्तु इस परम पवित्र अभिलाषाको बहुत ही सावधानीपूर्वक आपको पुष्ट करना चाहिये । जैसे वृक्षकी अंकुर–अवस्थामें बाड़ देकर रक्षा की जाती है, प्रतिदिन जल देकर उसका पालन किया जाता है, उसके चतुर्दिक् उगनेवाली खर–पंक्तियों (नुकसान पहुँचाने वाली विषैली घास) को हटाकर उसे नीरोग रखा जाता है, उसे पाले आदिसे पानी देकर अथवा जूटकी बोरी आदिसे ढककर रक्षा की जाती है, इसी तरह इस अभिलाषाको भी आपको अति सावधानीपूर्वक सुपुष्ट करना पड़ेगा ।

यह निश्चय है कि आपके ये भक्तिभाव यदि सुपुष्ट हो गये तो आप तीनों (सत्व, रज एवं तम) गुणोंका अतिक्रमणकर भगवान्‌के प्रेमस्वरूपको प्राप्त कर लेंगे।

इस भक्तिभावको सदाचरणकी बाड़ लगाकर पहले सुरक्षित किया जाता है, अन्यथा इसे विषयभोगरूपी वृत्तियाँ (बकरियाँ) चर जाती हैं ।

आपको सचमुच ही भक्तिरूपी इस वृक्षमें लगनेवाले भगवत्प्रेमरूप फलोंका यदि स्वाद चखना है, तो सर्वप्रथम भगवान्‌की कृपाका भरोसा करके आपके द्वारा प्रायः घटित होनेवाले सभी असत् आचरणोंको कराल विषतुल्य मरणान्तक मानकर त्याग देना चाहिये । इन झूठ, चोरी, दूसरेका धन अथवा राज्यकरका अपहरण करनेका पाप (हिंसा) मनको कड़ा करके, निश्चयपूर्वक सर्वथा छोड़ देना चाहिये। यदि आप सचमुच ही इन्हें कड़ा मन बनाकर त्याग देंगे, तो निश्चय ही प्रभु आपकी स्वयं पूर्ण सहायता करेंगे । परन्तु आपका यह सुदृढ़तम निश्चय तो होना ही चाहिये कि चाहे प्राण भले ही चले जावें, मैं पाप कदापि नहीं करूँगा । यह भक्तिभावरूपी वृक्षके अंकुरको रक्षा करनेवाली बाड़ है ।

यह बात आप निश्चयपूर्वक मान लें कि इन झूठ, चोरी, हिंसा आदि अशुचि आचरणोंसे केवल आपका ही सर्वनाश होगा, सो बात नहीं है, इस पापमें जो भी आपके भाई, बन्धु, मित्र, परिवारके माता–पितादि पूज्यजन भी यदि सहायक हैं, तो उन सबका घोर अहित एवं नाश निश्चित ही है । इसमें कहीं कोई मीन–मेख, कोई विकल्प है ही नहीं । भगवान्‌ने जो श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है कि–

महापुरुषोंकी महिमाका ज्ञान
पत्र प्रेषिति–श्रीहनुमानजी ठर्ड

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानामासुरीष्वेव योनिषु ।।

अर्थात्, इन नराधमोंको, जो अति क्रूरतापूर्वक आत्मासे, धर्मसे द्वेष करते हैं, मैं संसारमें बारंबार अशुभ एवं आसुरी कूकर–सूकरादि योनियोंमें डालता हूँ । यह बात कभी असत्य होनेवाली नहीं है । भगवान्‌का न्याय भी उसी प्रकार अमोघ है, जैसी उनकी दया, कृपा है । मूर्खतावश लोग इसे समझते नहीं हैं ।

अतः अबतक जो भी पापकर्म हमसे हो गये हैं, उन्हें भगवान्‌की कृपा पर छोड़कर, भविष्यमें कोई भी दोष संघटित नहीं हों, इसकी सतत चेष्टा रखनेकी आवश्यकता है ।

आपने जैसा लिखा है कि पिता, चाचा, भाई आदि सभी परिवारके गुरुजन पाप करनेकी प्रेरणा देते हैं और वैसा न करनेपर व्यापारिक अर्थहानिका उत्तरदायी मुझे ही समझते हैं, तो इसका उत्तर यही है कि शास्त्रमें यह बात स्पष्ट तौर पर आती है कि यदि पिता भगवद्विमुख हो और पापकी आज्ञा दे, तो उसका कहना कदापि नहीं मानना चाहिये । श्रीतुलसीदासजी तो सर्वोच्च महात्माओंकी श्रेणीमें आते हैं । वे कहते हैं :–

"जाके प्रिय न राम वैदेही
तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही ।
पिता तज्यौ प्रह्लाद, विभीषण बन्धु, भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यौ, कंत व्रजबनितनि, भये जग मंगलकारी ।

अतः भाई ! तुम्हें परिवारके कोई भी सम्बन्धी, गुरुजन यदि पाप करनेकी आज्ञा दें अथवा ऐसा करनेका मन ही बनावें तो तुम्हें उसका पालन कदापि नहीं करना चाहिये ।

जबतक भैया ! तुम्हारा यह अति सुदृढ़ निश्चय नहीं होगा, तुम जो भी भजन करोगे, वह भजन, सौ छिद्रवाली चलनीमें जैसे पानी इकट्ठा नहीं होता है, बह जाता है – वैसे बह जायेगा, उसका प्रकट फल तुम्हारे सम्मुख नहीं आ पावेगा । वृत्तियाँ शुद्ध नहीं होनेसे भजनमें रुचि और आनन्द नहीं आवेगा और भजन दीर्घ काल तक एवं नित्य नव–नव रससे भरा नहीं हो पावेगा ।

अतः पापोंके त्यागका निश्चय सुदृढ़, सुदृढ़तर होना चाहिये । इस

निश्चयमें शिथिलता आनेसे एक बार त्याग दिये गये पाप पुनः हो सकते हैं । हाँ, यदि दोनों बातें एक साथ हुई, भजनमें पूरी बढ़ोतरी और पाप–त्यागका सुदृढ़तम, नित्य नव–नव उत्साहपूर्वक निश्चय, तो प्रभु–कृपासे आत्मबल बढ़ेगा, पापप्रवृत्ति टूट जायेगी; किन्तु मनमें यह निश्चय दृढ़तापूर्वक होना चाहिये कि पापोंको मैं आत्मसमर्पण नहीं करूँगा, चाहे प्राण भले ही चले जावें।

इस प्रकार पापोंको त्यागकर यदि आप भजन करेंगे और भजनमें मन लगने लगेगा, तो अपने–आप भगवान् एवं महापुरुषोंकी महिमा समझमें आने लगेगी । उसके पहले हमारी जो कल्पना है, वह मात्र उनके बाहरी रूपकी ही होती है ।

आप दुजारीजीसे अथवा किसीसे भी बहुत ऊँची–ऊँची बातें सुन सकते हैं, परन्तु उनको सही प्रकारसे हृदयंगम करना और लाभ उठाना, केवल मात्र भजनसे ही संभव हो सकता है । स्वयं भजन नहीं करेंगे, वे बातें केवल बातें ही बनी रहेंगी। भाईजीकी सबसे बड़ी महिमा यही है कि उनकी श्वास–श्वाससे भगवान्‌का साक्षात् स्मरण होता है, उनकी आँखें निरंतर भगवान्‌को देखती–सुनती हैं, उनके मनके प्रत्येक भाव भगवान्‌को ही समर्पित होते हैं और वे स्वयं भगवान्‌के ही हैं । इसका अर्थ यही तो है कि हम उनसे शिक्षा लेकर अपना जीवन वैसा ही ढाल लें। यदि हम केवल यह सुनते रहे, बोलते रहे कि भाईजी इतने महान् हैं, भाईजी ऐसे भक्त हैं, तो होगा क्या ? भाईजीके मुखसे निगला ग्रास क्या हमारा पेट भरेगा ? हमारा पेट तो तभी भरेगा जब हम भाईजी–जैसे स्वयं भजन कर भगवान्‌के हो जावेंगे।

भाईजीकी सबसे बड़ी महानता, मेरी दृष्टिमें यही है कि वे एक साधारण वैश्यकुलमें उत्पन्न हुए सामान्य जीव थे । उनमें कभी, कोई अवतारी शक्तियाँ नहीं रहीं । वे सामान्य जीव बनकर जन्मे, उन्होंने सामान्य लोगोंकी तरह ही गृहस्थ–धर्मका पालन किया । उनके बाल–बच्चे हुए; उनका भी उन्होंने सामान्यतया ही निर्वाह किया । उन्होंने कभी कोई असामान्यता अपने जीवनमें दरसाई ही नहीं, अपितु सामान्य मानव–जीवनमें जो भी क्षुद्रताएँ, कमियाँ हो सकती हैं, अन्ततक वे उन्हें ही अपनेमें दरसाते रहे, परन्तु भगवद्भजनको दृढ़तापूर्वक नित्यनूतन वेगसे बढ़ाते चले गये । वे स्वयं यावज्जीवन भगवच्छरणागत रहे और सबको वैसा ही हो जानेका उपदेश भी देते रहे ।

उन्होंने एक शब्द भी ऐसा कभी सम्भाषण नहीं किया, जो वे स्वय आचरण नहीं कर सके हों । वे सत्संगमें भी प्रायः वे ही बातें बताया करते हैं, जो वे जीवनमें उतार चुके होते हैं । वे पूर्ण भगवद्विश्वासी, सर्वथा सब प्रकारसे भगवान्‌पर पूरे मनसे निर्भर हैं । अब मैं, आप, दुजारीजी अथवा अन्य कोई भी

जबतक पूरे भगवद्विश्वासी नहीं होते, भाईजीकी स्थिति कैसे समझ पावेंगे ? भाईजी तो अवश्य ही इन सभी स्थितियोंसे और बहुत ऊँची कल्पनातीत गतिको भी लाँघते गये हैं; हम जो कुछ ऊँचाई मात्र सोच सकते हैं, वह तो भाईजीकी स्थितिके सम्मुख तुच्छातितुच्छ है, परन्तु जिस अगम्य दुर्लभ गतिको भाईजीने प्राप्त कर ली है, उसकी हमारी बुद्धि कल्पना भी तो तभी करेगी, जब कुछ सीढ़ियाँ हम भी चढ़ जावेंगे ।

आप मुझसे पूछेंगे कि आप मुझे जो कुछ भी बतला सकते हैं, वह तो बताइये, तो मैं सत्यधर्मसे कहता हूँ कि मुझे भी जो कुछ मालूम है, वह आप समझ नहीं सकियेगा । इसमें आपकी बुद्धिका दोष नहीं है । आप पूर्ण बुद्धिमान् हैं, परन्तु वह स्थिति ही ऐसी नहीं है, जो सुनकर समझी जा सके ।

आप सचमुच ही यदि समझनेकी इच्छा रखते हैं, तो मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप भजन कीजिये । भजन आपको योग्यता देगा और तब भगवान् या स्वयं भाईजी ही आपको बिना संकोचके सब बात समझायेंगे ।

मैं इस मतका भी नहीं हूँ कि आपको जो भी बातें श्रीदुजारीजीके द्वारा सुननेको मिल रही हैं, उन्हें मत सुनिये । भाईजीकी महिमा कोई भी कहे, सुन लीजिये, परन्तु सुननेमात्रसे आपको वह लाभ नहीं मिल सकता, जो मिलना चाहिये। वह लाभ तो तभी मिलेगा, जब जीवन बनेगा । अतः पूरी शक्ति लगाकर पापोंसे पूरी घृणा करते हुए, उन्हें छोड़कर तत्परतापूर्वक भजनमें लग जाइये । फिर स्वयं भगवान् गरज करके आपको सब समझावेंगे ।

आपको कोई यह भी समझा सकता है कि स्वामीजीने आपको टरका दिया, उनकी कहनेकी इच्छा थी नहीं, सो दूसरी बातें बनाकर आपको संतोष करा दिया, तो मुझपर विश्वास करें कि ये बातें बुद्धिके परेकी हैं, अनुभूतिपरक हैं । यदि कह भी देता और आप कुछका कुछ समझ लेते, तो लाभके स्थानपर हानि भी हो सकती थी । 'मिश्री' बहुत ही अच्छी वस्तु है, परन्तु संग्रहणीकी बीमारीमें वह हानि करती है एवं कुपथ्य मानी जाती है । जबतक पाप हैं, तबतक प्रेमकी ऊँची-ऊँची बातें सावधानीपूर्वक ही सुननी चाहिये।

आप स्वस्थ और सानन्द होंगे । मैने सच्ची एवं हितकी समझकर ही आपको अपने मनकी बातें लिखी हैं, यदि पसन्द नहीं आवें तो क्षमा करेंगे ।

आपका
चक्रधर

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–२

शुद्ध अन्नसे ही शुद्ध मन संभव है

भैया श्रीहनुमानजी ठर्ड !

सस्नेह जय श्रीराधे । आपका पत्र यथासमय मिल गया था । पूर्वमासकी पूर्णिमापर पत्रोत्तर नहीं लिखा जा सका था; अतः पत्रोत्तरमें हुए विलम्बपर विचार मत कीजियेगा । आपने पुनः भाईजीकी महिमाके दो–चार प्रसंग लिखनेका आग्रह किया, सो आपके भावपक्षका मैं हृदयसे अनुमोदन करता हूँ ।

देखिये हनुमानजी ! सभी धर्मोंके दार्शनिक एवं सभी आधुनिक वैज्ञानिक भी, एकमतसे यह बात मानते हैं कि अन्नसे ही मन बनता है । यदि आप सात्विक, पवित्र अन्नका भोजन करेंगे, तभी आपका मन भगवद्विश्वासको अपने आचरणका आधारस्तंभ बना सकेगा । संत और भगवान्, दो पृथक् अस्तित्व हों, ऐसी बात नहीं है । इसीलिये संतपर विश्वास और भगवान्पर विश्वास, दो बातें नहीं हैं । यदि हमारा संतपर विश्वास नहीं है, तो संत–महिमाकी ऊँची बातोंपर कैसे विश्वास हो सकता है ? संत एवं भगवान्पर पूर्ण विश्वास ही संत एवं भगवान्की महिमाको हृदयमें उतारनेका सच्चा साधन है । अतः मनको शुद्ध, संत–विश्वासी बनानेकी पहली सीढ़ी है– अन्न सात्विक हो, सात्विक विधिसे, सात्विक विचारोंवाले व्यक्ति द्वारा निर्माण किया गया हो और वह सात्विक कमाईसे प्राप्त किया गया हो ।

यह बात आपको अति साधारण मालूम पड़ेगी, परन्तु मनको शुद्ध बनानेके लिये यह पूर्णरूपसे परमावश्यक है । महाभारतमें भीष्म पितामहके प्रसंगमें यह बात बहुत ही स्पष्ट रूपसे आयी है ।

महाभारत युद्धकी समाप्तिपर एक दिन युधिष्ठिरको भगवान् श्रीकृष्णने कहा कि ज्ञानके सूर्य दादाजी भीष्म पितामह अस्त होने जा रहे हैं, उनसे जो भी सीखना हो, सीख लो । भगवान्के निर्देश पर सभी पाण्डवोंसहित युधिष्ठिर, द्रौपदी एवं श्रीकृष्ण कुरुक्षेत्रके उस भूभागपर गये जहाँ भीष्मजी शरशय्यामें पड़े, सूर्यके उत्तरायण होनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे । वे सूर्यके उत्तरायण होनेपर ही देह त्याग करना चाहते थे । पाण्डवों एवं भगवान् श्रीकृष्णको अपने पास आया देख, भीष्मजी बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णको मृत्युके समय अपने पास ही खड़े रहकर, दर्शन देते रहनेकी

शुद्ध अन्नसे ही शुद्ध मन संभव है
पत्र प्रेषिति–श्रीहनुमानजी ठर्ड

प्रार्थनाकी, क्योंकि युद्धभूमिमें उनके पास भगवान्‌को आसन देनेकी सुविधा तो थी नहीं। युधिष्ठिरने भीष्मजीसे बहुत ही मार्मिक धर्मकी बातें पूछीं, और सभी बातोंका दादा भीष्मजी सांगोपांग उत्तर देते गये । इस प्रकार युधिष्ठिर एवं भीष्मजीका वार्त्तालाप चल ही रहा था कि वहीं खड़ी, इस संवादको सुन रही, द्रौपदी मुसका उठी ।

द्रौपदीको हँसते देखकर दादाजीने पूछा–"बेटी ! तू तो पतिव्रता स्त्री है, तुम्हारी जैसी स्त्री अकारण नहीं हँस सकती । बोलो, सत्य बताना, तुम्हें हँसी किस कारणसे आयी ?"

द्रौपदीने उत्तर दिया – "दादाजी ! मुझे एक सन्देह हो गया है । आज तो आप इतनी ऊँची धर्मकी वार्त्ता कर रहे हैं, धर्मके सूक्ष्मसे सूक्ष्म स्तरोंकी सरल और सारगर्भित व्याख्या कर रहे हैं, परन्तु आपका यह धर्म–ज्ञान उस समय कहाँ चला गया था, जबकि भरी सभामें मेरी साड़ी दुःशासन द्वारा खींची जा रही थी ?"

द्रौपदीकी बात सुनकर दादाजीने उत्तर दिया–"बेटी ! तू सत्य कह रही है। पापात्मा दुर्योधनका अन्न खानेसे उस समय मेरी बुद्धि दूषित हो गयी थी और मैं न्याय–अन्यायका पूर्णतया विचार नहीं कर सका था ।"

भैया ! जब दूषित अन्न खानेसे भीष्मजी जैसे, गंगामाताके पुत्र और सत्यनिष्ठ, नैष्ठिक ब्रह्मचारीकी बुद्धि भी धर्म–अधर्मका निर्णय करनेमें भ्रान्त हो सकती है, तो राज्यकरकी चोरी जैसा दूषित महापाप करके अर्जित धनसे प्राप्त अन्नको खानेसे अशुद्ध हुई आपकी बुद्धि भाईजी जैसे महा–महा पवित्र महापुरुषकी महिमाको कैसे धारण कर पावेगी–यह बात मेरी तुच्छ बुद्धिमें उतर ही नहीं पा रही ।

भैया ! हमारी सभीकी स्थिति यही है – भाईजी जैसे भगवत्प्रेमी महापुरुषकी महिमाके साथ भी हम मात्र मनोविनोद ही कर रहे हैं । भाईजीके पवित्र साधनामय जीवनको, उनके विश्वासोंको हम अपने आचरणोंका आधारस्तंभ कहाँ बना रहे हैं ? अन्यथा हम तुच्छ धनके लिये असत्य भाषण, राज्यकरकी चोरी, विषयविलासरूपी कलिपंकमें ग्राम्यशूकरकी तरह पड़े रहनेकी अपनी आदतें कुछ तो छोड़नेके लिये सचेष्ट होते । हमारे धन अर्जनका प्रयोजन क्या है ? विषय विलासकी सुविधायें ही तो धनसे जुट पाती हैं, झूठे अहंकारकी पुष्टि ही तो धनबहुलता करेगी और उसका परिणाम घोर नरकोंकी प्राप्ति ही तो होगी।

अतः भाई हनुमानजी ! अत्यंत प्यारसे, एक हितू मित्रकी तरह तुम्हें यही राय देता हूँ कि अपने संत–विश्वासको जीवन्त बनाओ । हम जब भगवान्‌के परम मंगलमय दुःखक्लेशरूप प्रसादको प्राप्त करनेसे इतने घबड़ाते हैं और भगवान्‌को त्यागकर विषयभोगोंको प्राप्त करनेके लिये असत्य, कपट, चोरी, व्यभिचारादि पापोंको अमृतकी तरह सेवन करते हैं, तो भाईजी जैसे महासिद्ध सन्तका प्रेमचरित्र

और उसकी महिमाके कहाँ अधिकारी हैं ?

भाईजीने तो स्वार्थरहित हो, भगवत्प्रेमको ही अपने जीवनका ध्रुवतारा बनाया है । उनके तो प्रत्येक कर्म, सोने, जागने, उठने, बैठने, खाने, पीने, हँसने, बोलनेका पर्यवसान ही भगवत्प्रेममें है ।

भैया हनुमान ! भाईजीके किसी एक जीवन पक्षको तो हम अपने आचरणका आधारस्तंभ बनावें । हम यह तो अटल ध्रुव निश्चय करें कि चाहे हमें घोर दरिद्रता मिले, भगवान् हमें अन्नके दाने–दानेके लिये मोहताज कर दें, हम एकनिष्ठ होकर वही कर्म करेंगे जो भगवान्को प्रसन्न करनेवाला है । उस समय यदि तुम पैसे–पैसेके मोहताज हुए मर भी गये, जगत्में दरिद्रताके कारण तुम्हारा सर्वत्र यदि तिरस्कार–अपमान ही हुआ, तो भी तुम्हें यह सन्तोष तो होगा कि मृत्युपर्यन्त शेष जीवन मैने भगवान्की सेवामें, उनके अनुकूल आचरण करते हुए बिताया ।

भैया ! भगवान् हमारी त्रुटियों एवं कमजोरियोंको भली प्रकार जानते हैं, वे ठीक समझते हैं कि हमारी गति ही उनकी ओर नहीं है, हमारी माँग भी भगवान् नहीं हैं, फिर भी अकारण हितू भगवान्ने हमपर अपनी अनन्त कृपाकी बौछार की और हमें भाईजी जैसे अपने सर्वाधिक–प्रियपात्रकी सेवा प्रदान की।

अतः भाई ! इस बरसती भगवत्कृपाको अपने पास सुरक्षित सँजोकर रख सको, और वह तुम्हारी स्थायी पूँजी बन जाय, इसके लिये तुम्हें कुछ ठोस उद्योग तो करना ही होगा ।

अतः इसे ही भाईजीकी महिमाकी बात मानो कि यदि तुम सचमुच पापरहित होकर भगवान्की नाम–जप साधनामें जुट जाओ, तो तुम्हारे हृदयमें निश्चय ही भगवत्प्रेमकी ऐसी तरंग उठेगी, जो बिना किसी बाधाके तुम्हें भगवान्की ओर धकेलकर अग्रसर कर देगी । तुम्हारा साधन–पथ निश्चय ही भाईजीकी कृपासे बहुत ही निष्कण्टक होगा ।

भैया ! आवश्यकता यही है कि तुम अपने जीवनके क्षण–क्षणको भगवत्स्मृतिमें ही बिताओ और कोई भी पाप भूलकर भी तुम्हें आकर्षित नहीं कर पावे ।

यह निश्चय है कि तुमपर भगवान्की असीम हेतुरहित कृपा है । क्योंकि भगवान्की असीम कृपाके बिना तुमसे भाईजी–जैसे महापुरुषकी शरीर सेवा बन ही नहीं सकती थी । कोई–न–कोई बाधा, विघ्न आ ही जाता ! यह सत्य है कि भगवान्ने तुम्हें अपनी कृपाशक्तिके विपुलदानसे अनुगृहीत किया है ।

तुम प्रति दिवस प्रभातमें निद्रासे उठते ही बिस्तरोंमें बैठे–बैठे प्रार्थना करो– "हे प्रभो ! मुझे अपनी शक्ति देकर अधोगतिसे ऊपर उठायें । मेरे अपराधोंका परिमार्जन करें ।"

शुद्ध अन्नसे ही शुद्ध मन संभव है
पत्र प्रेषिति–श्रीहनुमानजी ठर्ड

हनुमान भैया ! जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें विशुद्ध भावसे भगवान्‌को अत्यंत समीप समझकर, नितान्त सरलता और सच्चाईके साथ अपने हृदयकी सभी भावनाओंको हम भगवान्‌को निवेदन कर दें और एकमात्र उन्हींकी प्राप्तिके लिये चेष्टारत हों। अपनी शक्तिभर प्रयत्न करनेसे निश्चय ही भगवान्‌की कृपासे हमें वह मंगलमय स्थिति प्राप्त होगी, जिसकी शिव–सनकादि मुनिजन भी अत्यंत लालसा करते हैं । विषयोंसे मन हटानेपर और उसे भगवन्मुखी करनेपर ही हमें वह प्रेममयी स्थिति प्राप्त होगी, जहाँसे हम श्रीभाईजीके सच्चे स्वरूपको ताक सकेंगे ।

आपका
चक्रधर

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।

पत्र संख्या–३

भगवान् कृपा करते ही हैं

पत्र–प्रेषक :

परम पूज्य स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज

(परम पूज्य श्रीराधाबाबा)

पत्र – प्रेषिति :

श्रीरामेश्वरजी मुकलानिया

पत्र–प्रेषणस्थल :
भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी हवेली
ग्राम, पोस्ट – रतनगढ़, (बीकानेर राज्य)
दिनांक : १० मार्च १९४०

प्राप्तिसूत्रः
श्रीशिवकिसनजी डागाके
पत्र–संग्रहसे प्रतिलिपि

आलोक

श्रीरामेश्वरजी मुकलानिया एक सात्विक धर्मभीरु सज्जन हैं । ये श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दका एवं भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके परम श्रद्धालु हैं । इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन गीताप्रेसको समर्पित किया हुआ है । वर्षोंतक श्रीसेठजीके साथ रहकर इन्होंने उनके विचार और प्रवचनोंको मारवाड़ी भाषासे हिन्दीमें रूपान्तरित करके लेख तैयार करनेकी सेवा की है । ये वर्तमानमें भी गीताप्रेसके समर्पित कार्यकर्त्ता हैं । जीवन–पर्यन्त इन्होंने गीताप्रेसकी ही सेवा की है ।

———————

प्रिय रामेश्वरजी !

सादर सप्रेम यथायोग्य । आपका पत्र पढ़कर एक प्रकारसे मन व्यथित हुआ । अवश्य ही हम सभीकी, जो भगवान्से विरहित संसारमें पड़े हैं, वस्तुतः दशा अति दयनीय ही है ।

एक बात अवश्य है । यद्यपि यह बात किसीके भी सामने प्रमाणित हो सके या इसे मैं प्रमाणित कर पाऊँ–ऐसी सामर्थ्य तो मेरेमें नहीं है तथापि यह कह सकता हूँ कि मेरा ऐसा सुदृढ़ विश्वास है कि आपने, मैंने या किसीने भी यदि जीवनमें एक बारके लिये भी भगवान् श्रीकृष्णका आश्रय पकड़ा है, तो किसी–न–किसी दिवस उनकी कृपादृष्टि हमको इस विषय–कीच–कूपसे अवश्यमेव निकालेगी और

वे हमें निश्चय ही अपना नित्य, परममंगलमय सामीप्य देकर कृतार्थ करेंगे ही । चाहे मैं एवं आप अथवा कोई भी भगवान् श्रीकृष्णकी कितनी ही अवहेलना कर रहा हो, एवं आगे भविष्यमें भी चाहे और कितनी ही अवहेलना करे, वे हमारे दोषोंपर दृष्टिपात करते ही नहीं, करेंगे ही नहीं और अपने अखण्ड सौहार्दभरे स्वभावसे वही करेंगे, जिससे हम शीघ्र–से–शीघ्र उनके शाश्वत, मंगलमय चरणोंका अखण्ड आश्रय प्राप्त कर सकें ।

देखें, हमारी कल्पनामें यह बात आ ही नहीं सकती कि उनका प्रेम कितना निस्वार्थ, दिव्य एवं अलौकिक आत्मीयतासे परिपूर्ण होता है । जीवन यदि एक बार उनसे सम्बन्ध जोड़कर अज्ञानतावश उनसे हटना भी चाहे, तो हट नहीं सकता । भगवान्का अलौकिक आकर्षण इतना प्रबल होता है कि क्षणभरमें ही सम्पूर्ण जागतिक आसक्तियाँ जलकर खाक हो जाती हैं और जीव शुद्ध होकर उनमें मिल ही जाता है । जगत्में जितने भी श्रीकृष्ण–प्रेमी हुए हैं, या होंगे सभीके प्रति आगे–पीछे, देरसे अथवा शीघ्र, यह कृपा हुई है अथवा होगी ही । भगवान् जिसे एक बार स्वीकार कर लेते हैं, उसे कभी भी नहीं छोड़ते ।

आप कुछ भी नहीं कर पावें, तो अपनी सामर्थ्य–भर अधिक–से–अधिक कालतक उनका नाम जप करनेकी ही चेष्टा करें ।

मेरी इस बातपर विश्वास करलें कि श्रीकृष्णका प्रत्येक विधान अनंत प्रेम एवं मंगलसे ओतप्रोत है । अमावस्याके घने अन्धकारके पश्चात् शुक्लपक्षकी ज्योत्स्नामयी रजनी आती ही है ।

मुकलानियाजी ! यह कौन बता सकता है कि श्रीकृष्ण आपको इन परिस्थितियोंमें डालकर क्या देना चाहते हैं ? आपका निश्चय ही मंगल–ही–मंगल हो रहा है । यह बात तो प्रत्येक भगवद्विश्वासी व्यक्ति कह ही सकता है ।

मैं तो आपसे यही निवेदन कर सकता हूँ कि आप अपने भगवद्विश्वासको सजीव बनावें । भगवद्विश्वास एवं नाम जपसे असंभव संभव हो सकता है । मुझे उन लोगों पर तरस आता है, जो भगवद्विश्वासको अपने आचरणका स्तंभ नहीं बनाकर, अन्य साधनोंका आश्रय लेते हैं । मेरी दृष्टिमें भगवान्के पावन नामोंका जप और भगवद्विश्वासके अतिरिक्त इस कलिकालमें अन्य कोई साधना हो ही नहीं सकती । हमें पूर्णताके निकट ले जानेके लिये ये दोनों साधन अनमोल हैं।

भाई ! जैसे सुख–शान्ति भगवान्का कृपा प्रसाद है, उसी प्रकार दुःख–क्लेश भी भगवान्की ओरसे आनेवाला उनका कृपा प्रसाद ही है । अपनी त्रुटियों एवं कमजोरियोंको भगवान्के समक्ष निवेदन कर दें, फिर चाहे कल्याण हो अथवा अकल्याण, उत्थान हो अथवा पतन, उन्नति हो चाहे अवनति, इस सम्बन्धमें फिर

सोचनेका कभी विचार ही नहीं करें । भगवान् जब चाहेंगे, इन कुकृत्योंको दूर करनेका स्वयं उपाय कर लेंगे । हमें अपने पास जो कुछ भी है, अच्छा–बुरा, शुभ–अशुभ, अपना सर्वस्व भगवान्को समर्पित कर देना चाहिये; फिर चाहे भगवान् हमें घोर नरकोंमें डालें, चाहे स्वर्गसुख दें, उनके प्रत्येक विधानमें हमें सन्तोषका अनुभव ही करना चाहिये।

आप अपने हृदयमें तनिक भी चिन्ता नहीं करें, क्योंकि आप भगवदाधीन हैं । जब भगवान् आपके लिये दुःख–क्लेशका विधान रचेंगे, तो उसको सहन करनेकी शक्ति भी अवश्य ही देंगे । फिर भय क्यों ?

मुकलानियाजी ! स्वार्थरहित होकर, अपने जीवनका लक्ष्य भगवत्प्रेम बनाइये। आपके प्रत्येक कर्मका पर्यवसान भगवत्प्रेममें ही हो । दृढ़ निश्चय करें कि मैं केवल एकनिष्ठ हुआ भगवत्प्रीत्यर्थ ही कर्म करूँगा । यदि आपके आत्मप्रीत्यर्थ कर्म बन्द हो जावें, तो फिर पाप होनेके द्वार तो सदा–सर्वदाके लिये बन्द हो ही जायेंगे, क्योंकि सारा विषय–विलास मात्र आत्मभोगार्थ ही है ।

हम यदि सूक्ष्मतासे विचार करें, तो हमें पता लगेगा कि भगवान्की कृपाके बिना तो हम श्वास भी नहीं ले पाते हैं । अतः जब हमारे प्राणोंका स्पन्दन भी भगवान्की शक्तिसे हो रहा है, हमारी श्वास–प्रश्वास उनकी कृपाशक्तिसे चल रही है, हमारी हृदयकी धड़कन भी उन्हींके संकल्पका फल है, तो फिर विचार करें कि भगवान् हमारे कितने अधिक समीप हैं ।

अतः जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें विशुद्ध भावसे भगवान्को अपने अत्यन्त समीप समझकर, नितान्त सरलता और सच्चाईके साथ अपने हृदयकी अच्छी–बुरी प्रत्येक भावनाको उनके सामने रखते हुए, जो भी कर्त्तव्य–कर्म आपके लिये प्रस्तुत हो, उसकी सफलताके लिये भी भगवान्से अनुनय–विनय करें । फिर यदि प्रभुकी ओरसे हमें असफलता भी मिले, तो चिन्ता नहीं । सफलताकी आकांक्षा सभी प्राणियोंमें होती है, परन्तु भगवत्प्रेमी सफलताके स्थानपर प्रभुकी रुचिकी जय हो–यही कामना करता है ।

मुकलानियाजी ! भगवान्की ओर देख–देखकर ही यदि हमारे जीवनका क्षण–क्षण व्यतीत हुआ, तो हम सदा सन्तोष और प्रसन्नतासे ही भरे रहेंगे और क्या कहूँ ?

आपका
चक्रधर

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–४

जगत्को भूलें

पत्र–प्रेषकः

परम पूज्य स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज (पू. श्रीराधाबाबा)

पत्र–प्रेषितिः

श्रीरामेश्वरजी मुकलानिया, कलकत्ता

पत्र–प्रेषणस्थलः	प्राप्ति–सूत्रः
भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी हवेली	श्रीमुकुन्दजी गोस्वामी द्वारा
ग्राम, पो. रतनगढ़ (बीकानेर राज्य)	प्रतिलिपि किया
दिनांक :	श्रीशिवकिसनजी डागाका
आश्विन शुक्ल पूर्णिमा १९९७ वि. सं.	पत्र–संग्रह

श्रीयुत मुकलानियाजी,

आपका स्नेहभरा पत्र मिला । भाई, मैं तो आपको एक ही राय दे सकता हूँ । आप श्रीकृष्णके चरणोंमें अपना सब कुछ आत्मसमर्पण कर दीजिये, और इस जगत्को एवं अपने स्वयंको भी सर्वथा–सर्वांशमें भूलनेकी चेष्टा करिये। आपका सब दुःख इसीसे मिट सकता है ।

भाईजीके पास रहनेकी इच्छा आपके मनमें है, यह बड़ी सुन्दर बात है। अनन्त भाग्योदयके उपरान्त ऐसी इच्छाका स्फुरण मात्र होता है, परन्तु यदि मेरी बातपर विश्वास कर सकें, तो कर लीजिये कि इस इच्छाकी पूर्ति भी आप प्रभुकी रुचि पर ही छोड़ दीजिये ।

यह सत्य,सत्य, परम सत्य है कि भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का संग भगवान्के संगकी अपेक्षा भी अनेक अंशोंमें बढकर है । यह भावुकताकी सर्वथा बात नहीं है । वस्तुतः ही भगवान्की प्राप्तिकी अपेक्षा सच्चे सन्तकी प्राप्ति बड़ी दुर्लभ है । सन्तोंकी भी अनेक श्रेणी होती हैं । जो भगवान्के सगुण–साकार रूपके प्रेमी भक्त हैं, उनके दर्शन, स्पर्श, सेवाकीतो बात ही क्या, उनसे स्पर्श पायी

हुई वायु भी यदि किसीको संस्पर्शित होती है, तो भी वह महा–महाभाग्यवान् है ।

साथ–ही–साथ यह भी उतनी ही महत्वपूर्ण बात है कि यदि श्रीकृष्ण ऐसे सौभाग्यका दान हमें नहीं करना चाहते हों एवं घोर विषयीजनोंके मध्य ही हमें रहने देनेका विधान बनाये हों, तो उनकी रुचिमें ही हमारी रुचि मिल जाय, मुझे यही बात श्रेयस्कर लगती है । अतः हमें प्रभुके विधानसे जबतक ऐसी सुविधा नहीं मिलती है कि हम पू. भाईजीके तीन हाथके शरीरके नित्य–संगी हों, हमें उनके शारीरिक संगकी स्पृहा अधिकतर, अधिकतम बढ़ाते जाना चाहिये । यह स्पृहा इतनी अधिक बढ़ जाय कि साक्षात् प्रभुको एवं संत–दोनोंको यह चिन्ता हो जाय कि यदि उनसे हमारा शारीरिक मिलन नहीं हुआ, तो हमारे कहीं प्राण ही नहीं छूट जावें ।

श्रीतुलसीकृत रामचरितमानसका कैसा शुभ प्रसंग है । श्रीविभीषणजी रावण–वध एवं लंकापुरीकी विजयके पश्चात् भगवान् रामजीसे कहते हैं –

अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजे । मज्जनु करिअ समर श्रम छीजे ।।
देखि कोस मन्दिर सम्पदा । देहु कृपाल कपिन्ह कहुँ मुदा ।।
सब विधि नाथ मोहि अपनाइअ । पुनि मोहि सहित अवधपुर जाइअ ।।
सुनत वचन मृदु दीनदयाला । सजल भए द्वौ नयन विसाला ।।
दोहा – तोर कोस गृह मोर सब सत्य वचन सुनु भ्रात ।
भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात ।।
तापस वेष गात कृस, जपत निरन्तर मोहि ।
देखौं बेगि सो जतनु करु सखा निहोरऊँ तोहि ।।

"हे प्रभु ! अब इस दासके घरको पवित्र कीजिये । घरपर चलकर स्नान कीजिये, जिससे समरकी थकावट दूर हो जाय । हे कृपालु ! खजाना, महल और सम्पत्तिका निरीक्षणकर प्रसन्नतापूर्वक वानरोंको दीजिये । हे नाथ ! मुझे सब प्रकारसे अपनालीजिये और हे प्रभो ! मुझे साथ लेकर अयोध्यापुरीको पधारिये ।"

विभीषणजीके वचन सुनकर दीनदयालु प्रभुके दोनों विशाल नेत्रोंमें (प्रेमाश्रुओंका) जल भर आया । श्रीरामजीने कहा–"हे भाई ! सुनो, तुम्हारा खजाना और घर सब मेरा ही है, यह बात सच है । पर भरतकी दशा याद करके मुझे एक–एक पल कल्पके समान बीत रहा है । वे तपस्वीके वेषमें कृश–शरीरसे निरन्तर मेरा नाम जप रहे हैं । हे सखा ! वही उपाय करो जिससे मैं जल्दी–से–जल्दी उन्हें देख सकूँ; मेरा तुमसे यही अनुरोध है ।

दोहा – *बीतें अवधि जाउँ जौं जिअत न पावउँ बीर ।*

सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु, पुनि पुनि पुलक सरीर ।

हे विभीषण ! यदि अवधि बीत जानेपर मैं जाता हूँ, तो भाईको जीवित नहीं पाऊँगा ।" छोटे भाई भरतजीकी प्रीतिका स्मरण करके प्रभुका शरीर बार–बार पुलकित हो रहा है ।

श्रीमुकलानियाजी ! जैसी भरतकी विरह दशा थी, यदि यही दशा हमारी श्रीभाईजीके विरहमें हो जाय, तो भाईजी फिर हमको, आपको एक क्षण भी अपनेसे विलग नहीं करेंगे । परन्तु हम भाईजीके मिलनकी केवल ऊपरी चाह ही रखते हैं, कहीं–न–कहीं हमारे भीतर कोई–न–कोई उनसे अनुकूलताकी, सुखकी, हितकी कामना है, हमारा जीवन–निर्वाह भाईजीके बिना बहुत ही आनन्दके साथ व्यतीत हो रहा है, हम सभी शरीर एवं भोगोंके सुखमें उनके अभावमें भी रचे–पचे हैं, तब श्रीकृष्ण पूरे अन्तर्यामी होनेके कारण, ऐसा विधान नहीं बनाते कि हमारा श्रीभाईजीसे नित्य–संग बना रहे ।

देखिये ! मेरे मनमें आपके प्रति प्रेम–ही–प्रेम है, किन्तु सत्य कहता हूँ, मैं एक अति साधारण मनुष्य हूँ । मैं तो सर्वसमर्थ श्रीकृष्ण–कृपाकी ओर दृष्टि जमाये सर्वसाधनहीन एवं अकिंचन उनके चरणोंमें पड़ा हूँ । उनकी दया–कृपा ही मेरे जीवनका आधार है । मेरी तरह निरवलम्ब आप भी उनके चरणोंको पकड़े रहिये। फिर जो हो, सो होता रहे ।

चाहे हम दोनों, उस अवस्थामें कितने ही दीन–हीन होंगे, वे हमारी उत्तम–से–उत्तम, अलौकिक गति अवश्य करेंगे; हम दोनों ही गर्त्तमेंसे निकल जायेंगे । एक दिन उनकी कृपा अवश्यमेव असंभवको संभव कर देगी ।

हाँ ! उनकी ओर हमारी आशा लगी रहे । हम अन्य किसीकी ओर भूलकर भी नहीं निहारें ।

मुकलानियाजी ! भगवान्‌के प्रत्येक विधानमें हमारा मंगल ही मंगल भरा है। हमें कब और किस समय कौनसी वस्तु चाहिये, इसको वे अन्तर्यामी अच्छी तरह समझते हैं । भगवान् हमसे कितना अपार स्नेह करते हैं–इस बातको यदि हम समझ पावें, तो फिर हमें भले कोई भी परिस्थिति प्राप्त हो–चिन्ता और कामना दोनों ही नहीं हो । सुख–दुःख, अनुकूल–प्रतिकूल, अच्छा–बुरा सब हमारे लिये समान हो जायें । मिलन–अमिलन भी हमारे परम सुहृद भगवान्‌के द्वारा रचित मात्र खेल (लीला) ही तो हैं; और हैं सब हमारे कल्याणके लिये ही ।

भगवान्‌ने जब कितनी ही सांसारिक कामनाओंकी पूर्ति हमारी की है, तो इस परम पवित्र, अनन्त मंगलकारी, संत–मिलनकी कामनाकी पूर्त्ति वे नहीं करेंगे, उनपर इस प्रकार हमारा अविश्वास क्यों हो ? परन्तु यह पवित्र कामना चाहे हमारे

लिये लोकदृष्टिकी कामनाओंसे ऊँचे–से–ऊँचा पारमार्थिक हितभरा स्थान रखती हो, परन्तु है तो यह कामना ही, जो आपाततः स्वहित एवं स्वसुख (कल्याण) की भावनासे भरी है ।

मैं तो आपसे यही कहूँगा कि हमारा आदर्श तो 'स्व' का आत्यन्तिक विस्मरण एवं मात्र श्रीकृष्ण–रुचिका पालन ही हो, फिर चाहे हमें घोर दुःखमूलक नरकवास ही क्यों न मिले । हमें यह तो आश्वासन रहेगा ही कि हमने जीवनभर भगवान्से कुछ भी कामना नहीं की एवं भगवद्रुचिका ही जीवन जिया।

मुकलानियाजी, भगवत्रसिकजी एक बहुत ही उच्चकोटिके भगवत्प्रेमी भक्त हुए हैं । उनकी वाणी उल्लेख कर दे रहा हूँ :

स्वर्ग, नरक, अपवर्ग–आस नहिं त्रास है ।
जहँ राखौ, तहँ रहौं, मानि सुख रास है ।।
देव, दया करू दान, न भूलौं केलिकौं ।
भगवत वलित–तमाल बिलोकौं बेलिकौं ।।
दुख–सुख पावै देह नहीं कछु संक ही ।
निन्दा–अस्तुति करौ राव कै रंक ही ।।
परमारथ व्यवहार बनौ कै ना बनौ ।
अंजन है मम नयन रसिक भगवत सनौं ।।

उनकी वाणीका भाव यही है कि हे प्रभो ! मेरे लिये स्वर्ग–सुख एवं नरकका दुःख दोनों ही समान हैं, क्योंकि ये दोनों ही आप प्रभुके द्वारा ही रचित विधान हैं, आप मेरे परमसुहृद हो, अतः आप भयानक नरकका भी विधान मेरे लिये करोगे तो वह नरक मेरे लिये आपकी प्रसन्नताका हेतु होनेके कारण स्वर्गसे बढ़कर सुखदायी होगा । भयानक–से–भयानक परिस्थितियाँ तभी हमारे लिये दुःखदायी, क्लेशदायक होती हैं, जब हमारा मन विभ्रमग्रस्त होता है । शुद्ध एवं श्रद्धायुक्त हृदयसे यदि हम नरकके भयंकर कष्टको भी स्नेहार्द्र भगवान्के द्वारा प्रेषित अनुभव करने लगते हैं, तो उससे होनेवाली समग्र मानसिक एवं शारीरिक व्यथा हमारे चित्तसे स्वतः ही लुप्त हो जाती है और उसके स्थानपर हमें प्राप्त होता है, एक मूक, अलौकिक, परम सुखमूलक सौहार्दभरा आश्वासन ।

अतः प्रभो ! आप मुझे जहाँ, जैसे भी रखेंगे, मैं उस आपके विधानको अपने लिये परम मंगल एवं सुखका खजाना (निधि) ही मानूँगा ।

मुझे तो नाथ, यदि कोई आपसे दान प्राप्त करना है, तो वह मात्र इतना ही है कि मैं सर्वत्र आपकी सरस, प्रेमभरी, भगवती राधाजीके संग घटित होनेवाली केलिको कभी विस्मृत नहीं करूँ । उसे सदा ही अपने सम्मुख प्रकट होती देखता

रहूँ । मुझे आपके लीलाराज्यका प्रत्येक तमाल आपसे युक्त ही दिखाई पड़े अर्थात् सर्वत्र आपही–आप भरे दीखें ।

हे प्रभो ! मेरा यह देह यदि दुःख–सुख पाता है, तो मुझे किसी भी प्रकारकी शंका नहीं है । सम्पूर्ण विश्वमें सम्राट् किंवा दरिद्र कोई भी यदि मेरी घोर निन्दा–स्तुति करेंगे, तब भी मैं अपनी कोई क्षति नहीं मानता, क्योंकि मेरा प्रयोजन उनसे कुछ भी नहीं है । मेरा तो प्रयोजन मात्र आपसे ही है । प्रभो । मुझे परमार्थ–साधना बनने अथवा नहीं बननेकी भी परवाह नहीं है, क्योंकि आपकी प्राप्ति किसी भी साधनसे संभव ही नहीं है । आप किसी पुरुषार्थ अथवा साधनके फल हैं ही नहीं । आप तो मात्र अपने शरणागत, सर्वत्यागी प्रेमीजनोंको अपनी हेतु–रहित कृपासे ही दृग्गोचर होते हैं । मैं तो, नाथ, इतनी ही आपकी अनुकम्पाका याचक हूँ कि आप अंजनकी तरह मेरे नेत्रोंमें सने रहें । एक क्षणके लिये भी आपका मुखकमल मेरे नयनोंसे ओझल नहीं हो । बस, आपका वियोग मुझे सह्य नहीं है।

भाई मुकलानियाजी ! हमारा सर्वस्व, भाईजीके सुखके लिये, सेवाके लिये, उनकी आज्ञापालनमें लगे, चाहे उनका शरीर–संग हमें मिले या नहीं मिले ।

भाईजीने आपको पत्र लिखा है, उनके पास आपके लिये कोई काम तो है नहीं । उन्होंने कहा है कि सत्संगके लिये दो–चार–दस दिवसके लिए आप आना चाहें, अवश्य आवें, परन्तु आपको पुनः लौटना है । ऐसा न हो कि आपको पुनः लौटनेमें अधिक कष्ट हो ।

शेष राधाकृष्णकृपा ।

आपका
चक्रधर

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।

पत्र संख्या–५

सन्तके सम्मुख सन्देह नहीं रहते

पत्र–प्रेषिति :

श्रीरामेश्वरजी मुकलानिया, कलकत्ता

तिथि–मार्गशीर्ष कृष्णा अष्टमी वि. सं. १९९७

श्रीयुत रामेश्वरजी मुकलानिया !

सादर सप्रेम यथायोग्य ।

नाम–जपके सम्बन्धमें एकमात्र आपकी उत्कण्ठा ही मुख्य हेतु है । आप जितनी लगन एवं श्रद्धा रखेंगे, उतना ही नाम–जप होगा । आपने लिखा कि नाम–संख्यामें प्रमादवश कमी रह गयी, अतः मैंने एक समय भोजन नहीं किया । सो इस विषयमें मेरी तुच्छ समझसे भोजन नहीं करनेसे आगे भूल नहीं हो, ऐसा तो है नहीं । अनेक बार मन यह प्रमाद कर लेता है कि आज नाम–जप न सही, भोजन नहीं करेंगे ।

नाम–जप नहीं हुआ, इसका सही प्रायश्चित यही है कि दूसरे दिवस दुगुना नाम–जप किया जाय । इससे मनको प्रमाद करनेका अवसर नहीं मिल पावेगा । अन्यथा मन प्रमाद एवं अरुचि प्रकट करता हुआ, यही कहता रहेगा, आज अन्न नहीं खायेंगे, फलाहार कर लेंगे, दूध ले लेंगे, नाम–जप न सही ।

रतनगढ़से लौटते समय गाड़ीमें बैठते हुए आप भाईजीकी यादमें रो पड़े, अपने–आपको रोक नहीं सके, इस सम्बन्धमें मैं यही कह सकता हूँ कि आपपर प्रभुकी बड़ी कृपा है ।

भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) भगवत्प्रेमी सन्त हैं, भगवान्से भी वे बढ़कर हैं, उनसे आपका प्रेम होना सचमुच ही श्लाघ्य है । संसारमें सभी स्त्री–पुत्र, घर–परिवारसे बिछुड़ने पर रोते हैं, कोई धन–नाश होनेपर रोता है । आप भाईजी जैसे संतके लिये रोये यह आपका महाभाग्य है । परन्तु मेरा आपसे इस विषयमें इतना ही निवेदन है कि आप रोइये, किन्तु एकान्तमें बैठकर, सबसे

छिपकर। एकमात्र श्रीकृष्णके सामने ही आपका रुदन प्रकट हो । आपके रोनेकी बात स्वयं भाईजी भी कभी भूलकर भी नहीं जान पावें । जब श्रीकृष्ण स्वयं भाईजीको आपके रोनेकी बात कहें, तभी भाईजीको भी आपका रुदन ज्ञात हो, ऐसा परम गोपनीय रोना रोइये ।

आपने लिखा कि मैं जब भाईजीसे दूर कलकत्ते अथवा अन्यत्र था, तो मेरे चित्तमें हजारों ही प्रश्न एवं सन्देह उठते थे । परन्तु ज्यों ही मैं रतनगढ भाईजीके पास पहुँचा और जितने दिवस भी वहाँ उनके सान्निध्यमें रहा, मेरे सब सन्देहों और प्रश्नोंमें से एक भी स्मृतिमें नहीं आया और अब जब भाईजीसे दूर चला आया हूँ, तो वे सभी प्रश्न पुनः उमड़–घुमड़कर मेरे चित्तको मथ रहे हैं ।

इसका उत्तर यही है कि महापुरुषोंकी यही महिमा है । प्रश्न, उधेड़बुन सब तमोगुण–रजोगुणकी चित्तमें प्रबलतासे ही उठते हैं । महापुरुषोंके चारोंओर एक सीमाखण्डतक सत्वका आलोक प्रसरित रहता है । वह सत्वका प्रवाह हमारे, तुम्हारे, सभीके चित्तके रजोगुण तमोगुणको क्षीण, क्षीणतर कर देता है । अतः विशुद्ध सत्वकी अभिवृद्धिके साथ सब प्रश्न एवं सन्देह दूर कर देता है । प्रश्न स्वतः ही लुप्त हो जाते हैं । जैसे, जहाँ उत्तरी–दक्षिणी ध्रुवोंमें सूर्यदेव छःमासतक कभी नहीं छुपते, तो वहाँके रहनेवालों को ६ माह तक अन्धकार दिखता ही नहीं, उनके यहाँ इस अवधिमें रात्रि ही नहीं होती, इसीप्रकार महात्माका संग करनेपर साधककी सभी शंकाएँ सभी सन्देह एवं प्रश्न स्वतः लुप्त हो जाते हैं । महापुरुषोंसे मिलने पर मिलनेवालेके चित्तमें केवल प्रेमकी धारा ही बहती रहती है, यह परम स्वाभाविक ही है ।

श्रीनारायण स्वामीजी महाराज वृन्दावनके एक उच्चकोटिके महात्मा हो गये हैं । वे कुसुमसरोवर, गोवर्धनमें रहा करते थे । लोग देखते कि वे प्रतिदिन सरोवरसे दौड़ते हुए राधाकुण्ड तक जाते और बिना रुके, तत्क्षण ही मुड़कर पुनः दौड़ने लगते और कुसुम सरोवर पहुँच जाते । प्रतिदिन ही ऐसा करने पर लोगोंने उनसे पूछा – "बाबा ! ऐसा क्यों करते हो ?" तो स्वामीजीने हँसकर कहा–" भैया ! क्या बतावें, मैं देखता हूँ कि यार (श्रीकृष्ण) सामने ठाड़ौ है । मुझसे रहा नहीं जाता । मैं सारे कूँ पकड़वे दौड़ पड़ूँ, परन्तु वो पकड़में आवै नाँय । मोसौं रह्यौ नाँय जावै । वो भागै, तो मैं भी भागूँ । जब दौड़तो–दौड़तो थक जाऊँ, तबतक राधाकुण्ड आय जाय । वहाँ वो न जाने कैसे, मेरे पीछै आय जाय । मैं भी मुड़कर वाकूँ पुनः पकड़वे कूँ दौड़ूँ और दौड़तो–दौड़तो पाछौ कुसुम सरोवरपर आय जाऊँ भैयाओं ! या प्रकार वो मोय बूढेकूँ दौड़ावै और सतावै है ।"

लोगोंने पूछा – "बाबा ! तोय यौं रोज दौड़ावे, तो तुम वाते कारण नाँय

पूछौ ?

स्वामीजीने उत्तर दिया – "भैया ! का बताऊँ, वो दिखै नाँय, तबतक तो बहुत सारी बातें याद रहैं, पाछैं ज्यों ही वो दीखै, फिर तो कछु ही याद नाँय रहै। वाके देखनेमें सगरी बातें भूल जाँय । केवल बाकी चितवन ही देखतौ रह जाऊँ।"

मुकलानियाजी ! यही महापुरुषोंकी स्थिति होती है । उनके सम्मुख जो जितना निश्छल एवं कपटहीन रहता है, वह मनुष्य उतना ही अधिक उनके प्रेमको ग्रहण करता है । प्रेम–ग्रहण होनेपर शंका एवं प्रश्न तो विलुप्त होंगे ही। उस समय यदि कुछ प्रश्न उठते भी हैं, तो वे उस महापुरुषके प्रति अलौकिक प्रेमके अंग ही होते हैं । वे प्रेममय प्रश्न उस व्यक्तिके एवं महात्माके मध्य बहनेवाले प्रेम–प्रवाहको और भी उद्दीप्त कर देते हैं ।

देखिये, पिताजीका जो भी स्वभाव है, उसमें उनका तनिक भी दोष नहीं है। सब श्रीकृष्ण लीलापुरुषोत्तमका ही खेल है । वे बिचारे उनकी मायासे नाच रहे हैं। अतः अपने मनमें किसी भी प्रकार उनसे द्वेष–भाव कदापि मत रखियेगा । सदा, ठोक–ठोककर बार–बार यही निश्चय रखिये कि उनमें श्रीकृष्णकी पूर्ण सत्ता लबालब भरी है ।

(द्वितीय पत्र)

मनमें बार–बार सोचिये; दृढ़ धारणा कीजिये, प्रभुकी हमपर बड़ी कृपा है । यह बात मेरे कहनेभरसे मानलें, सो बात नहीं है; यह सही वस्तुस्थिति है। यदि प्रभुकी अपार करुणा नहीं होती, विशेष रूपसे दया नहीं होती, तो आपको श्रीसेठजी जयदयालजी एवं भाईजीके दर्शन ही नहीं होते और न आपके मनमें उनके विरहका कष्ट और नित्य मिलनकी आकांक्षा ही रहती, साथ ही आपके मुखसे भगवान्का नाम भी नहीं ही लिया जाता । प्रभुने आपके लिये कृपाके ये सभी राजद्वार खोल रखे हैं । अतः उन्हींकी कृपाका आश्रय करके इनको अधिक–से–अधिक मात्रामें ग्रहण कीजिये, अपने भीतर लबालब भरिये और प्रभुपर न्यौछावर हो जाइये ।

सच मानिये ! भगवान्से अधिक प्यार करनेवाला, सतत आपकी सम्हाल करनेवाला अन्य आपको कोई नहीं मिलेगा ।

एक योग–भ्रष्ट महात्मा कहीं पैदा हुए एवं धूलिमें खेल रहे थे । राजाकी सवारी निकली । राजाने पूछा–"धूलिसे क्यों खेलते हो ?" महात्माने कहा –

"धूलिसे शरीर पैदा हुआ, धूलिमें मिल जायेगा, इसलिये धूलिसे खेलते हैं।" राजाने कहा–"मेरे साथ चलोगे ?" महात्माने कहा–"चल सकता हूँ, परन्तु मेरी चार शर्त्तें माननी पड़ेंगी । पहली शर्त्त है – तू सदा नित्य–निरन्तर मेरे साथ रहेगा । दूसरी शर्त्त है – हम खूब खावेंगे, तू मात्र खिलायेगा और स्वयं कुछ भी नहीं खायेगा । तीसरी शर्त्त है – तुम कोई भी कपड़ा मत पहनो और मुझे खूब पहननेके लिये कपड़े दोगे । चौथी शर्त यह है – तुम कभी एक क्षणके लिये भी नहीं सोओगे और सतत जागरूक रहकर मेरी सम्हाल करोगे और मैं खूब छककर सोऊँगा ।"

राजाने कहा – "महाराज ! ऐसा क्या कभी हो सकता है ? हाँ ! मैं आपको खिलाकर खाऊँगा । आपको जैसे कपड़े मैं पहनता हूँ, पहनाऊँगा। आपके सोनेपर सोऊँगा और जहाँ मैं जाऊँ, रहूँ आप भी रहियेगा ।"

महात्माने कहा – "मैं तुम्हारे जैसे दीन दरिद्रके पास नहीं रहता । मेरा मालिक ऐसा है, जो कभी नहीं सोता और मेरे सोनेपर निरन्तर जागकर सावधानीपूर्वक मेरी रक्षा करता है । मुझे भरपेट खूब खिलाता है और स्वयं कभी नहीं खाता । वह स्वयं कपड़े नहीं पहनता और मुझे सुन्दर–से–सुन्दर कपड़े पहनाता है । वह सदा मेरे साथ ही रहता है और एक क्षणके लिये भी मुझे छोड़कर कहीं नहीं जाता ।"

तो मुकलानियाजी, ऐसे प्रियतम, प्रमी, सखा भगवान् श्रीकृष्णको छोड़कर इस संसारमें किन भोगों और भोगियोंका आश्रय लें । विश्वमें कोई भी भोगका स्वरूपतः त्याग तो कर ही नहीं सकता, परन्तु भोगकी आसक्ति तो सर्वथा त्याग ही सकता है । देहकी सम्हाल कीजिये, परन्तु भीतर जागरूक रहकर यही मानिये, देह उनकी वस्तु है, और वे उसे जैसे चाहें रखें, मेरा इसमें कौन सा ममत्व है ?

भगवान्की कृपाका आश्रय करके बढ़नेकी चेष्टा करियेगा, तो कुछ भी असंभव नहीं है । मनमें दोष भरे हैं, माना, पर हम यदि उत्साह तोड़ेंगे तो ये और भी तंग करेंगे । उनके चरणोंका आश्रय करके दोषोंको निकाल डालिये । एक क्षणके लिये भी निराश मत होइये । हतोत्साह होना, क्षीण हुए दोषोंको भी बल देना है । दोषोंको निकालनेकी चेष्टा करनेपर ये मनमें छुप जाते हैं और जिस दिन भी मनुष्य उत्साह भंग करता है, उस दिन दोष जोर मारने लगते हैं । इसलिये उत्साह कभी मत तोड़िये, लेते जाइये भगवान्का नाम ।

किसी भी रुकावट डालनेवालेके प्रति मनमें तनिक भी द्वेष मत रखिये। बाहरी रुकावट, हमारे मनमें भगवान्के प्रति कितनी लगन है, उसकी मात्र परीक्षा है ।

सन्तके सम्मुख सन्देह नहीं रहते

पत्र प्रेषिति–श्रीरामेश्वरजी मुकलानिया

परिवारके सभी लोग भगवान् द्वारा आपको सौंपी हुई धरोहर हैं । इनका आदर, सेवा, सत्य एवं प्रेमसे भरकर करें । सेवाके द्वारा सबके संतोष–विधानका प्रयत्न करें । किसी भी सांसारिक परिस्थितिके लिये रोना श्रीकृष्णका अनादर करना है । परिस्थितिके सर्जक तो साक्षात् भगवान् ही हैं और उन्होंने मात्र हमारा मंगल करनेके लिये ही विषम परिस्थितिका विधान किया है । मेरे मनमें जो भाव प्रभुने उत्पन्न किये, वे लिख दिये हैं । घरमें सभीको सस्नेह, सादर भगवत्स्मरण ।

आपका

चक्रधर

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–६

वृत्तियोंको भगवन्मयी बनानेकी साधना

पत्र–प्रेषक :

परम पूज्य स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज

पत्र–प्रेषिति :

श्रीजयदयालजी कसेरा

प्रेषण–स्थल : गीता वाटिका, गोरखपुर
दिनांक : १८ नवम्बर १९३७ ई.

प्राप्ति–सूत्र: श्रीशिवकिसनकी डागाका पत्र–संग्रह

आलोक

श्रीजयदयालजी कसेरा सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अभिन्न सहयोगी थे । इनकी समाजसेवा प्रवृत्ति श्लाघनीय थी । समाजसेवी होनेके नाते इनका महात्मा गाँधी, श्रीजवाहरलालजी नेहरू, महामना मदनमोहनजी मालवीय आदि सभी नेताओंसे पारिवारिक, घनिष्ठ, आत्मीय सम्बन्ध रहा । मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी, विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय, जैसी अनेक सामाजिक संस्थाओंमें इनका उल्लेखनीय योगदान रहा है । कलकत्तामें जब गोविन्दभवन ट्रस्टकी स्थापना हुई, तो इसमें इन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की । ट्रस्टकी आरंभिक बैठकें प्रायः इन्हींके सभापतित्वमें होती थीं । गोविन्दभवन ट्रस्टके ट्रस्टी होनेके पश्चात् सेठजी श्रीजयदयालजीसे इनकी घनिष्ठता बढ़ती ही गयी। कालान्तरमें ये श्रीसेठजीके अनन्य भक्त बन गये । पू. श्रीसेठजीकी सत्संग गोष्ठियोंमें ये प्रायः सम्मिलित होते थे । उनके प्रवचनोंके श्रवण हेतु, ये प्रायः प्रतिवर्ष ही गीताभवन, स्वर्गाश्रम जाते थे । गीताप्रेसके लिये इनके द्वारा

की गयी सेवायें सदैव आदरके साथ स्मरण की जायेंगी । ज्येष्ठ कृष्ण ४ सं. २००३ को ७२ वर्षकी अवस्थामें क्रूर कालने इन्हें अपना ग्रास बना लिया। ये महाभाग्यवान् थे कि सेठजी श्रीजयदयालजीके सान्निध्यमें गीताभवन, स्वर्गाश्रममें गंगाके पावन तट पर इनका पाञ्चभौतिक शरीर ब्रह्मलीन हुआ । इनके देहावसानकी सूचना प्रकाशित करते हुए भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने 'कल्याण' के २०वें वर्षके दसवें अंकमें लिखा है – 'उनका सनातनधर्मका प्रेम, पवित्र हृदय, सरल व्यवहार, उनकी मैत्रीभावना, अतिथिसेवा, व्यवहार कुशलता, परदु:खकातरता, उदारता और सेवापरायणता, उनकी सैद्धान्तिक निष्ठा और दृढ़ता, उनकी भक्ति और प्रीति, भगवत्कृपा तथा भगवान्‌के मंगलविधानमें उनका दृढ़ एवं अटूट विश्वास–ये सभी ऐसे आदर्श गुण थे, जो एक ही साथ, एक ही व्यक्तिमें प्रायः नहीं पाये जाते ।' स्वामीजी श्रीचक्रधरजी महाराजके प्रति इनकी श्रद्धा थी और ये उन्हें प्रायः पत्र लिखते थे । इनके दो पत्र जो उपलब्ध हुए हैं, साधकोंके लिये अति उपयोगी समझकर प्रकाशित किये जा रहे हैं।

प्रिय श्रीकसेराजी !

सादर सस्नेह यथायोग्य । आपका कृपा–पत्र मिला । आप मुझपर जो श्रद्धा–स्नेह रखते हैं, उसका मैं आभारी हूँ ।

आपने पत्रमें अपने मनकी समग्र वृत्तियोंको भगवन्मयी बनानेकी साधनाके सम्बन्धमें प्रश्न पूछा है, इसके उत्तरमें मुझे यही विनीत निवेदन करना है कि अभी तो मेरी स्वयंकी वृत्तियाँ ही पूर्णतया भगवन्मुखी नहीं हुई हैं । मैं स्वयं एक साधारण साधक हूँ और श्रीसेठजी तथा भाईजी {हनुमानप्रसादजी पोद्दार} के कथनानुसार ही साधना करता हूँ । मेरी वृत्तियाँ, जिन्हें भटकना नहीं ही चाहिये, अभी भी भटकती हैं, फिर भी आपका निश्छल प्रेम देखकर मनमें जो बातें आ रही हैं, उन्हें लिख दे रहा हूँ । मैं आपको कोई उपदेश दे रहा हूँ, ऐसा सर्वथा मत मानियेगा, क्योंकि आपने निष्कपट भावसे प्रश्न किया है, अतः जैसी मैं स्वयं साधना करता हूँ अथवा भगवत्प्रेरणावश जो भी मेरी बुद्धि आपको लिखनेकी प्रेरणा कर रही है, वह लिख दे रहा हूँ । आप यह प्रश्न श्रीसेठजी {श्रीजयदयालजी गोयन्दका} अथवा भाईजी {हनुमानप्रसादजी पोद्दार} से भी पूछ लीजियेगा और सर्वोपरि महत्व उनकी ही बातोंको दीजियेगा । मेरी बातें यदि उनसे मेल खातीं आपको रुचिकर

एवं हितकारी अनुभवमें आवें, तभी मानियेगा, अन्यथा मेरा पत्र बकवास समझकर फैंक दीजियेगा ।

मेरी तो इन दिनों यही साधना है कि 'मैं' एवं 'मेरे' से सम्बन्धित जो कुछ भी है, वह सब कुछ मेरे प्रियतम प्रभुका ही है, मेरा अपना कुछ भी नहीं है। मेरे मनने अबतक सर्वथा मिथ्या ही ऐसा मान रखा था कि यह शरीर, शरीरके सम्बन्धसे इसके भाई–बहिन, पिता–माता, स्त्री–परिजन, साथ ही शरीरगत मन–बुद्धि, बुद्धिकी वृत्तियाँ एवं उनके द्वारा सम्पादित अनन्त कर्मराशि, मेरी हैं, मैं 'कर्त्ता' हूँ और साथ-ही-साथ इन सभीका 'भोक्ता' भी हूँ । इस मिथ्या धारणासे ही इनके सुधार–बिगाड़की भी मुझे चिंता हुआ करती थी । इधर श्रीसेठजी एवं भाईजीकी विशेष कृपासे इस समझका उदय हुआ कि यह मात्र मेरे मनकी अहंकारगत, सर्वथा ही मिथ्या धारणा है । यह स्वामी 'चक्रधर' नामक कीट प्राकृत विधानानुसार उसी प्रकार पिता द्वारा गर्भाधान किया जाकर मातृकोखमें सुसंवर्धित हुआ है तथा समय पाकर निर्गत हुआ है, जैसे प्राकृत विधानसे एक सूकर–कूकर अथवा मक्खी–मच्छर, कोई कीट–फतंगा होता है । जैसे सूकर–कूकर एवं कीटके संस्कार एवं स्वभाव भिन्न–भिन्न होते हैं, इसका भी पिता–माता द्वारा प्रदत्त संस्कारानुसार स्वभाव बना है । इस मानव–कीटकी भी जो भी त्रिगुणात्मक वृत्तियाँ हैं, वे सभी प्रभु द्वारा उनके परम मंगल विधानसे ही निर्धारित हैं ।

जैसे सूर्य–चन्द्र, अनन्त नक्षत्रमण्डल, पृथ्वी आदि महत्पिण्डोंकी सत्ता प्रभुद्वारा पूर्णतया नियंत्रित है, इसमें पलक झपकाने जैसा हेर–फेर संभव नहीं, उसी प्रकार सभी जीवोंकी एवं 'मैं–मैं' मिथ्या अहंकार करनेवाले इस मानव–कीटकी भी, छोटी–से–छोटी वृत्ति भी, प्रभुके पूर्ण मंगलमय विधानानुसार ही नियंत्रित है।

मुझे तो यही परमार्थका ककहरा समझमें आया है कि इस सत्य भावनाको बहुत सुदृढ़ करके जीव मिथ्या 'मैं' एवं 'मेरे' का महा–मोहभरा अहंकार त्याग दे । जैसे ही इस परम सत्य तथ्यपर विश्वास होगा, मैं, आप अथवा कोई भी साधक सभी सांसारिक एवं आत्मकल्याणकी चिन्ताओंसे मुक्त हो सकेगा । प्रभुके हेतुरहित दयालु स्वभावपर उसकी आस्था ज्यों ही सुदृढ़ होगी, तभी उसे सच्चे विश्राम एवं शान्तिकी उपलब्धि हो सकेगी ।

मैंने स्वयंने यही साधना की है और आपको भी यही मेरी तुच्छ सलाह है कि इस लोक अथवा परलोकमें, जो भी आप हैं अथवा जो कुछ किंचिन्मात्र भी आपका है, वह सब आज इसी क्षण ही प्रभुके चरणोंमें समर्पित कर दीजिये । सत्यांशमें यह सब संसार प्रभुका ही है, हमने मिथ्या ही यह बोझ अपने सिरपर डाल रखा है । होगा वही–जो प्रभु करेंगे, तभी होगा–जब प्रभु करेंगे, वैसा ही होगा–जैसा प्रभु

करेंगे । अतः व्यर्थ ही चिन्ताका बोझ अपने सिर क्यों लिया जाय ? मनकी इस सर्वथा मिथ्या भ्रममूलक मान्यतासे ही सारा संसार दुखी है कि यह शरीर मेरा है, यह दुष्ट मन मेरा है, यह परिवार, यह व्यापार मेरा है । यह मेरापन ही इन सभीके बनने–बिगड़नेकी चिन्ता करवा रहा है । इस चिन्तासे ही दिनरात मनुष्य सकाम–कर्ममें लगा है और कर्मफलका भोक्ता हो रहा है । सचमुच ही यदि कोई स्वीकार कर ले कि सब कुछ प्रभुका है, तो सांसारिक दृष्टिसे जिसे 'सर्वनाश' कहा जाता है, वह होनेपर भी वह अनुभव करेगा कि कुछ भी बिगाड़ नहीं हुआ है । प्रभुसे अधिक बुद्धिमान तो संसारमें कोई दूसरा है नहीं, वे अपनी वस्तुको नष्ट कैसे करेंगे ? कोई भी बुद्धिमान् अपनी वस्तुको बिगाड़ता नहीं, नष्ट नहीं करता । वह यदि कुछ भी बिगाड़ता है, तो उसे और अधिक सुन्दर बनानेके लिये ही बिगाड़ता है । फिर वे सर्वभवन–समर्थ हैं, वे भला व्यर्थ ही अपनी वस्तु कैसे विनष्ट करेंगे ? वे तो निर्माण ही कर रहे हैं, सुन्दरसे सुन्दरतम निर्माणकी प्रक्रियामें ही हम सभी स्वभावतः ही प्रभुके द्वारा गुजारे जा रहे हैं । सच मानिये, यह केवल थोथी कल्पना नहीं है, परम सत्यका सत्य है । यदि इस वास्तविक स्थितिकी किंचित् भी झाँकी हममेंसे कोई भी कर पावे, तो फिर दुःख, चिन्ता, उसके जीवनसे सदा–सदाके लिये विदा हो जावें । जबतक यह अनुभव स्वयंका अपना नहीं हो, तबतक अगणित सन्तोंके अनुभवपर अपना विश्वास जमाना चाहिये । जब सनातन गोस्वामीने, श्रीचैतन्य महाप्रभुका शिष्यत्व स्वीकार किया, तो उन्होंने सर्वप्रथम अपने वास्तविक स्वरूपको जानना चाहा कि 'मैं कौन हूँ' । सनातन गोस्वामीके जिज्ञासा करने पर महाप्रभुने बताया कि सभी चेतन प्राणियोंका शाश्वत–स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके सेवकके रूपमें ही है । भगवान्से सम्बन्धके रूपमें इस अपने वास्तविक स्वरूपको नहीं जाननेके कारण ही भौतिक संसारमें सभी दुःख पा रहे हैं । मैंने तो अपने जीवनकालमें जितने भी पाश्चात्य एवं भारतीय सन्तोंके विचार पढ़े हैं, उनमें सभी उच्च सन्तोंका एक ही अनुभव पाया है कि प्रत्येक प्राणीकी प्रत्येक चेष्टाके क्षुद्र–से–क्षुद्र अंशका नियंत्रण भगवान्‌की शक्तिसे ही हो रहा है । ईसा मसीहको जब क्रॉसपर लटकाया जा रहा था, उस समय सभी देवशक्तियाँ यही अनुभव कर रही थीं कि भगवान्‌का परम मंगल ही सृष्टिपर अवतरित होने जा रहा है । अपने सम्पूर्ण शरीरके मर्मस्थलोंपर मोटी लोहेकी तीखी कीलें ठोक दिये जानेसे मर्मान्तक पीड़ावश उनके मनमें एक क्षीण–सा सन्देह अवश्य उदय हो गया था कि 'हे प्रभो! यदि आपकी भक्ति करने वाले लोगोंको इतनी वेदना और पीड़ा आपके द्वारा दी जायेगी, तो कौन व्यक्ति आपकी भक्ति करेगा ?' उसी समय देवशक्तियाँ ईसाको धिक्कारने लगीं । अन्ततः उनका सन्देह निवृत्त हुआ और वे मूक वाणीमें प्रभुके

वृत्तियोंको भगवन्मयी बनानेकी साधना
पत्र–प्रेषिति : श्रीजयदयालजी कसेरा

सम्मुख यही व्यक्त करते हुए मृत्युको प्राप्त हुए कि 'हे प्रभो ! तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। इसीमें पूर्ण मंगल है ।'

कसेराजी ! किसी भी व्यक्तिके जीवनमें यदि घोर जटिल समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, तो वे प्रभुके द्वारा उसे कीचड़से निकालनेका उपक्रम–मात्र ही होती हैं । अतः हमें इस संसारमें जो भी, जैसा हो रहा है, सबको प्रभुका परम मंगल–विधान मानते हुए बार–बार मनकी बिखरी हुई वृत्तियोंको जगत्‌के कोलाहलसे हटाकर नित्य सुखमय प्रभुके चरणोंमें जोड़ते रहनेकी ही चेष्टा करनी चाहिये ।

वास्तवमें हम लोग भगवान्‌के इतने अधिक कृपा–पात्र हैं कि हमें सेठजी गोयन्दकाजी एवं श्रीभाईजी जैसे महापुरुषोंका परम आत्मीय एवं नैकट्यपूर्ण सत्संग प्राप्त हुआ है । इनकी इस आत्मीयताके कारण पात्रके तारतम्यसे उनका वस्तुगुण तो काम कर ही रहा है । उसी वस्तुगुणका यह परिणाम है कि हम भगवान्‌की ओर प्रवृत्त हैं और इससे हटने नहीं पा रहे हैं । परन्तु इस जगत्‌के लिये अशेष कृपावतार इन महापुरुषोंसे जो हमारी सत्संग–विषयक चर्चा होती है, उसे हम बस, सुनते भर ही हैं । उन्हें हमारा मन ठीकसे धारण करनेका प्रयत्न नहीं करता । हम बातें अवश्य ऊँची–से–ऊँची सुन लेते हैं, परन्तु इन सन्तोंके सारभूत उपदेशको हमारा मन, जितना महत्व देना चाहिये, पहले तो देता ही नहीं, दूसरे महत्व देता भी है, तो अपने जीवनके लिये ये सभी अत्यन्त आवश्यकरूपसे पालनीय हैं, ऐसा नहीं समझता । इस उपेक्षाके कारण परमार्थ साधनके प्रति हमारी उत्कट लालसा ही नहीं होती और जीवनमें जिसको उतारनेकी पूर्ण चाह ही नहीं है, वह कार्य हमारा पूरा होना तो संभव ही नहीं है ।

कसेराजी ! अनन्त सन्तोंकी बातें शास्त्रोंमें भरी पड़ी हैं, वे सर्वथा असत्य नहीं हैं । सन्त त्रिकालज्ञ थे, आज भी हैं एवं आगे भी रहेंगे । सन्तोंकी वाणीका सार ही मैं बता रहा हूँ और उसे आचरणमें लानेकी चेष्टा करता हूँ । आप भी वैसा ही करिये ।

सन्त कहते हैं, भगवान् सर्वत्र हैं । श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् स्वयं अपने मुख से कहते हैं कि "मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय" अर्थात्, मेरे अतिरिक्त विश्वमें कहीं कुछ नही है । इस अमोघ सत्य बातपर विश्वास नहीं करके यदि हम दुकान, व्यापार, मैं, तू, तेरा, मेरा, कलकत्ता, दिल्ली देखते हैं और अपनी इन्द्रियोंकी भ्रामक दृष्टिपर विश्वास करते हैं, साथ ही भगवान्‌की अमोघ सत्य वाणीपर अनास्था करते हैं, तब हमारी वृत्तियाँ संसारमें बहेंगी ही, भगवान्‌को कैसे पकड़ेंगी ?

हम सन्तों एवं भगवान्‌की वाणीपर पूर्ण विश्वास करें, तो आज भी हम

वृत्तियोंको भगवन्मयी बनानेकी साधना
पत्र–प्रेषिति : श्रीजयदयालजी कसेरा

भगवान्‌को निश्चय ही सर्वत्र अखण्ड विराजित देख लेंगे एवं संसार हमारे लिये पूर्णतया उपेक्षणीय, स्वप्नवत्, मात्र मिथ्या, प्रातीतिक हो जायगा । जो क्षणभंगुर, मात्र उदयास्त स्वभाव वाला है, जो जाग्रत्‌में रहता है, स्वप्नमें दूसरा हो जाता है एवं निद्रामें विलुप्त हो जाता है, जो जन्ममें रहे और प्रलयमें विलुप्त हो जाय एवं स्थितिके सभय भी क्षण–क्षण हानि, लाभ, जन्म, मरण, यश, अपयशके रूपमें बदलता रहे, उसपर कौन बुद्धिमान आस्था करेगा ? जिसपर अपना वश ही नहीं, वह कैसे अपना हो सकता है एवं उसपर आस्था रखना महामूर्खता ही तो है ।

कसेराजी ! भगवान् श्रीमद्भगवद्गीतामें कहते हैं – "मृत्यु सर्वहरश्चाहं" अर्थात्, मैं ही सर्वस्व छीननेवाली मृत्यु हूँ, तो विपत्ति अर्थात् मनके प्रतिकूल होनेवाली परिस्थिति भी तो वे ही हैं । मृत्यु तो सब विपत्तियोंकी माता–पिता है। अतः यह निश्चित ही है कि कोई भी प्रतिकूल परिस्थिति यदि है तो उसके रूपमें हमें हमारे प्रियतम प्रभु ही आलिंगित कर रहे हैं । रूप चाहे कितना ही भयानक हो, हैं यथार्थमें उस भीषण परिस्थितिके रूपमें प्रभु ही । आपने प्रह्लादजीकी कथा तो खूब पढ़ी–सुनी होगी । प्रह्लादजीने तो साधारण भगवद्विश्वाससे कहा था कि पिताजी ! भगवान् आपमें, मुझमें, आपकी इस तीक्ष्ण खड्‌गमें, खंभमें सर्वत्र हैं, परन्तु भगवान् कैसा विकराल रूप रखकर नृसिंह रूपमें गरजते उस खंभेमेंसे व्यक्त हो गये,

हिरण्यकशिपु सँभले और अपनी ढाल तलवार सँभाले, तब तक तो झपटकर भगवान्‌ने उसे फाड़ ही डाला । उस रूपको देखकर लक्ष्मीजी भयभीत हो गयीं, परन्तु भक्त प्रह्लाद नहीं भयभीत हुए । उन्होंने ठीक अनुमान लगाया कि मेरे नाथ ही यह रूप रखकर आये हैं । वे हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे । साष्टांग प्रणिपात करके भगवान्‌को सर्वस्व आत्मसमर्पणकर भगवान्‌का स्वागत करने लगे ।

भगवद्भक्तको भगवान्‌का अनुकूल सुख देनेवाला रूप ही प्रिय हो, सो बात नहीं, उसे तो भगवान् जिस रूपमें आवें, वही रूप प्रिय है । जिसे भगवान् प्यारे हैं, वह रूपको कहाँ देखेगा ? चैतन्य महाप्रभुको गरजते समुद्रके रूपमें भगवान्‌के दर्शन हुए तो वे उछलकर समुद्रमें ही छलाँग लगा बैठे । भक्तश्रेष्ठ ऋषभदेवजीको दावानल भगवद्रूप दृष्टिगोचर हुई, तो वे आगमें स्वाहा हो गये, वहाँसे हटे ही नहीं। आग शरीरको राख कर सकती है, भागवती–आस्था भगवत्साक्षात्कार करा देती है।

जो भी साधक यह आस्था करता है कि भगवान् ही सर्वरूपमें उसके इतस्ततः सर्वत्र हैं, उसे तो भगवान्‌की प्राप्ति हो ही गयी । फिर उसकी वृत्तियाँ भगवान्‌को छोड़कर कहाँ जायेंगी ? यह हम सत्संगमें सुनते भर हैं कि भगवान् सर्वत्र हैं, भगवान् सर्वज्ञ हैं, भगवान् सर्वसुहृद हैं एवं भगवान् सर्वसमर्थ हैं । हम इन चारों बातोंपर एक क्षणके लिये भी सत्यांशमें आस्था कर लें, उसी क्षण भगवान् हमें

परम कल्याणरूपमें गले लगा लें । परन्तु हम तो सुनतेभर हैं, मात्र एक कानसे और तत्क्षण ही उसे विस्मृतकर रचपच जाते हैं–जड़ जगत्में, शरीरके क्षणभंगुर भोगोंमें, 'मैं–मेरे', 'तू–तेरे' में । फलस्वरूप हमें सन्तोंकी बातोंसे उनके अनमोल सत्संगसे वह लाभ हो नहीं पाता, जो हो जाना चाहिये ।

कसेराजी ! आप तो बुद्धिमान् हैं, आजसे ही मनकी अनुकूल, प्रतिकूल सब परिस्थितियोंके रूपमें, जड़, चेतन, सब पदार्थोंके रूपोंमें और अपने, पराये, उत्तम–अधम, सब व्यक्तियोंके रूपमें मात्र भगवान्को देखना प्रारम्भ कर दीजिये, देखिये ! आप भगवान्की लीला देखकर हँसते–हँसते लोट–पोट हो जायेंगे।

मुझे तो आजतक मेरे अथवा किसीके भी जीवनमें ऐसी घटना नहीं स्मरण है, जिसका परिणाम उसके लिये परम मंगलमय नहीं हुआ हो । यह आवश्यक है कि मनके विपरीत भयानक रूपमें जब भगवान् प्रकट होते हैं, तो लोग रोते हैं एवं वे ही, मनके अनुकूल मधुर रूपमें जब प्रकट होते हैं, तो सभी हँसते हैं, परन्तु इस हँसने एवं रोनेके अन्तरालमें हम अपने सौभाग्य–दुर्भाग्यका ही अनुभव करते हैं, भगवान्का अनुभव नहीं करते । शत्रुके रूपमें प्रभु आते हैं, तो हम द्वेष करते हैं और मित्रके रूपमें भगवान् आते हैं, तो हम राग करते हैं, परन्तु इस शत्रु–मित्रके रूपमें हम सभी राग–द्वेषका तो अनुभव कर लेते हैं, प्रभुका अनुभव नहीं करते, जब कि आवश्यक यही है–अनुकूल–प्रतिकूल परिस्थितिके रूपमें, शत्रु–मित्र व्यक्तिके रूपमें एवं लाभ–हानिमूलक वस्तुके रूपमें हमें अपने प्रियतम प्रभुको ही देखना चाहिये और उनका ही स्वागत करना चाहिये।

मेरे मनमें जो बात आई, लिख दी । यदि अच्छी रुचिकर लगे, तो स्वीकार करियेगा अन्यथा बेकार पन्ने समझ फेंक दीजियेगा ।

आपका
चक्रधर

———

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–७

प्रभुके लिये द्वार खोलें

पत्र–प्रेषक :

स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज {प. पू. राधाबाबा}

पत्र–प्रेषिति :

श्रीजयदयालजी कसेरा

पत्र–प्रेषणस्थल :
भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी हवेली,
मु. पो. रतनगढ़ {बीकानेर राज्य}
दिनांक : १३–२–४१

प्राप्ति–सूत्र :
श्रीशिवकिसनजी डागाके
पत्र–संग्रहकी प्रतिलिपि

श्री जयदयालजी कसेरा,

सादर सप्रेम यथायोग्य । आपका पत्र मिला । आपका शरीर अस्वस्थ जानकर विचार हुआ । वैसे तो सभीका शरीर क्षण–क्षण विनाशकी ओर ही बढ़ रहा है, परन्तु विनष्ट होनेसे पूर्व इसे यथासंभव इस अवस्थामें रखनेकी अवश्य चेष्टा करनी चाहिये कि जिससे यह अपनेमें रहनेवाले मनको अपने प्रियतम प्रभुकी ओर बढ़ानेकी चेष्टाके समय कहीं उद्विग्न नहीं कर दे । जिस क्षण वास्तवमें ही यह प्रभुको पकड़ लेगा, उस समय तो फिर इसकी सँभालकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी। सँभाल करेगा भी कौन ? सँभाल करता है, मात्र मन । वही जब प्रभुसे जा मिला, जुड़ ही गया, तो फिर प्रभु जैसी इस शरीरकी व्यवस्था करना चाहेंगे, वही होगी । परन्तु, जबतक वह परिस्थिति नहीं है, संयम, पथ्य, औषधिकी व्यवस्था आपने रखी ही होगी । यदि उचित समझें, तो सारी व्यवस्था–संबंधी बात एक पत्रमें मुझे अवश्य लिखेंगे ।

रह गयी प्रभुमें मन लगानेकी बात, सो असलमें सारा दोष हमारा अपना है। हमारे भीतर दृढ निश्चयकी कमी है । आप दृढ़ निश्चय करके अपने हृदयके द्वार प्रभुके लिये खोलिये तो सही, वे प्रवेश करके उसपर पूरा अधिकार नहीं जमालें, तो

मुझे कहियेगा । वास्तवमें तो वे आपके हृदयसे एक पल भी हटे नहीं हैं एवं हट सकते भी नहीं हैं । यह आवश्यक है कि हमारी जैविक–स्वाधीनताका उनके द्वारा हनन नहीं हो, इसलिये वे आपके हृदयमें आपकी अनन्त जन्मोंकी वासनाओंके ठीक अनुरूप पुत्र, कलत्र, धन, धाम, अपने, परायेके रूपमें आपको दर्शन दे रहे हैं । वे आपके 'अहं' के रूपमें आपको शरीर दिख रहे हैं । कसेराजी ! आपके आदिसे अन्त तक ऊपर, नीचे, सर्वत्र जो संसार भरा है, वह प्रभुके सिवा कुछ भी नहीं है। हाँ, हम उन्हें इसी रूपमें चाहते हैं, अतः वे हमें इसी रूपमें दृष्टिगोचर हो रहे हैं । द्वार खोल देनेका यही अर्थ है कि इस संसारके चिन्तनमें जो हम, आप रचे–पचे हैं, उससे पल, दोपल पृथक् होकर प्रभुके पूर्ण चिन्मय, घनानन्द, कल्याणस्वरूपकी ओर थोड़ा झाँकें तो सही । आदिसे अन्ततक जब हमारी चाह ही जड़ता है, तो वे सच्चिदानन्द परमप्रेमस्वरूप इस जड़ताभरे चिन्ताक्रान्त मनमें प्रवेश करें भी कैसे ? इसीलिये पहले सच्ची इच्छा इसकी ही जगानी है कि मुझे यह संसार नहीं चाहिये, प्रभुकी ही आवश्यकता है ।

एक बोतलमें यदि वायु भरी है तो जल नहीं रह सकता और यदि जल भरा है तो उसमें वायु रह नहीं सकती । इसी प्रकार जहाँ चिन्ता है, वहाँ आनन्दस्वरूप परमात्मा कैसे रह पावेंगे ? हृदयको अन्य चिन्तासे खाली करना ही भगवान्के लिये द्वार खोलना है । जब हमारी भीतरी चाह ऐसी होगी कि हमें भगवान्के अतिरिक्त कुछ भी नहीं चाहिये, तभी हमने उनके लिये अपने हृदयका द्वार खोला, ऐसा समझा एवं माना जायेगा । जब हमारे हृदयमें सतत उनका ही स्मरण रहेगा तभी ऐसा माना जायेगा कि उनके विराजनेके लिये हमने आसन लगा दिया । कसेराजी ! भूल जाइये इस संसारको और उसके स्थान पर स्मरण कीजिये :–

अहा ! भगवान् नारायण, भगवान् श्रीकृष्ण, भगवान् श्रीरामजी कितने सुन्दर हैं । अहा ! हमारे प्रभु माधुर्य और लावण्यके सागर हैं । उनके श्रीअंगोंमें पीताम्बर झलमला रहा है । वक्षस्थल पर स्वर्णरेखा और तुलसीरचित माला झूल रही है । अंग, अंग पर रत्नजटित आभूषण शोभा पा रहे हैं । लम्बी घुँघराली अलकें हैं । अहा ! मेरे प्रभुके अंगोंमेंसे कैसा सुवास प्रसरित हो रहा है। चमकते ललाटपर चन्दनकी खौर अत्यन्त शोभा दे रही है । मध्यमें गोरोचनका तिलक है । अहा ! मेरे प्रभुकी कैसी महिमा है, मानो ईश्वर प्रतिपादक समस्त उपनिषदोंका प्रामाण्य ही शरीर ग्रहण कर उनके रूपमें मूर्त्त हो गया है किंवा आनन्द सुधासागर ही घनीभूत हुआ विग्रहरूपमें प्रकट है । अहा ! जिन्हें कुछ लोग जगत्कर्त्ता कहते हैं, कुछ जिन्हें परमात्मा कहते हैं, जिन्हें कुछ तत्ववेत्ता ब्रह्म कहते हैं और भक्तगण जिन्हें भगवान् कहकर प्रतिपादित करते हैं, जिनका प्रभाव देशकालसे परिच्छिन्न नहीं है,

वे ही देखो मेरे ध्यानपथमें सीमाबद्ध हुए सगुण साकार विग्रह बने, मुझे दृष्टिगोचर हो रहे हैं । अहा ! इनका कैसा अचिन्त्य ऐश्वर्य है, मैं तो इनकी चरण–नख–चन्द्रिकामें ही अपना अस्तित्व विलीन कर दूँ । अहा ! इनका माधुर्य भी कैसा विलक्षण एवं असीम है, मेरा मन तो मरकतद्युति इनके कलेवरको हृदयमें निरन्तर बसाये रखनेका ही करता है । अहा ! मेरा सम्पूर्ण अन्तःकरण ही इनके श्रीअंगोंकी ज्योत्स्नासे उद्भासित हो रहा है । इनके अंग–सुवाससे मेरा रोम–रोम सुवासित हो उठा है ।

इस प्रकारकी झाँकीसे मनको निरन्तर भरते रहिये । देखिये ! फिर वे आकर आपके हृदय आसनपर बैठते हैं कि नहीं । पहले वे झाँककर देखेंगे मात्र । जब उन्हें आपके द्वार पूर्णतया उन्मुक्त मिलेंगे तो फिर भीतर थोड़ा सा प्रवेश करेंगे। वहाँ उन्हें अपनी ही छाया आनन्दमें नृत्य करती दीखेगी । वे कौतूहलवश उस छायाको केवल एक बार छू भर लेंगे । फिर तो वह उनकी छाया पूरा उनका स्वरूप ही बन जायेगी । आपके चिन्तनकी झाँकी तत्क्षण ही वास्तविक उनका दर्शन बन जायेगी । आप सदाके लिये कृतार्थ हो जायेंगे ।

परन्तु कसेराजी ! यह सब मात्र बातोंसे नहीं होने वाला है । करनेसे ही होगा । मेरा अन्तिम कथन इतना ही है कि हम सभीके जीवनका वही क्षण सार्थक है, जिस क्षण हम भगवान्‌का चिन्तन स्मरण करते हैं । शेष सब व्यर्थ है। सबको यथायोग्य ।

आपका
चक्रधर

{ श्रीकसेराजीपर पू. श्रीराधाबाबाके पत्रोंका बहुत ही प्रभाव पड़ा था । अन्तकालमें उनका जीवन सर्वत्र भगवान्‌को देखना और उनकी रुचिमें अपनी रुचि मिलाना, इस साधनाका प्रतिरूप ही हो गया था । जो भी इनके पास आता उसे वे यही कहते– ''भगवान्‌की हाँ में हाँ मिलाओ, भगवान् जो भी करें, उसीका अनुमोदन करो और उसीको अपने परम कल्याणका हेतु समझते हुए सिर झुकावो।'' वे इसी मंत्रका जप किया करते थे ।

भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने इनकी मृत्युपर अपने ये उद्गार प्रकट किये थे – ''कसेराजीकी मृत्यु सफल मृत्यु हुई, परन्तु उनके चले जानेसे सनातनधर्मका स्वयं आचरण करनेवाला एक बहुत ही पक्का सेवक, साधु सन्तोंका भक्त, सत्संगका प्रेमी प्रचारक, अद्वैतज्ञानका सिद्धान्ती, साथ ही परम भगवद्भक्त और एक महान् उदार प्रेमी पुरुषका स्थान खाली हो गया, जिसकी

पूर्त्ति वर्त्तमानमें तो हो नहीं सकती ।"

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–८

मना रे करु माधवसौं प्रीत

पत्र–प्रेषक :

परम पूज्य स्वामी चक्रधरजी महाराज {प0 पू0 श्रीराधाबाबा}

पत्र–प्रेषिति :

श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया, कलकत्ता

पत्रप्रेषणस्थल –
गीतावाटिका, गोरखपुर
दिनांक १२–१–४६ ई0

प्राप्तिसूत्र :
श्रीघनश्यामजी कानोडियासे
प्राप्त प्रतिलिपि

आलोक

कर्मठताके प्रतीक श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़ियाका जन्म सन् १८८५ ई0 में हुआ था । ये महेन्द्रगढ़ ग्राम, जिला पटियालाके निवासी थे । बालकपनसे ही ये भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके मित्र रहे । इनमें देशके प्रति अटूट प्रेम था । क्रान्तिकारी गतिविधियोंमें भी ये सदा श्रीभाईजी {ह0 प्र0 पोद्दार} के साथी रहे । परिणामतः इन्हें सन् १९१९ ई0 में गिरफ्तार कर लिया गया । बंगाल सरकारने श्रीभाईजीकी तरह इन्हें भी बंगालसे निष्कासित कर दिया । इस निष्कासनकी अवधिमें इन्होंने कुछ वर्षोंतक गोरखपुरमें अपना समय यापन किया था ।

हिन्दी एवं अंग्रेजी दोनों ही विषयोंमें इनका समान अधिकार था । साहित्यके प्रति इनकी प्रारम्भसे ही रुचि रही । 'कल्याण' पत्रिकाके प्रकाशनके आरम्भिक कालमें भी कुछ समयतक ये भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार को 'कल्याण' पत्रके सम्पादन कार्यमें सहयोग देते रहे । विविध विषयोंपर लिखे इनके निबन्ध विद्वत्ता और शास्त्रोंके गम्भीर चिन्तनके प्रतीक हैं । श्रीभाईजी {ह0 प्र0 पोद्दार} के आग्रहपर इनके निबन्धोंका एक संकलन 'तत्त्वविचार' के नामसे गीताप्रेसके द्वारा प्रकाशित हो चुका है ।

इनके सम्बन्धमें श्रीभाईजीके निम्न उद्गार हैं :–

"श्रीज्वालाप्रसादजी विचारशील पुरुष थे, उनके सुन्दर विचारोंको पाकर कोई भी व्यक्ति निश्चय ही लाभान्वित होगा ।"

श्रीकानोड़ियाजी वर्षोंतक 'रुबी जनरल इन्श्योरेंस कम्पनी' की कलकत्ता शाखाके व्यवस्थापक रहे । कर्मठता, कर्तव्यपरायणता, उदारता आदि गुण उनमें कूट–कूटकर भरे थे । अपनी विशिष्ट योग्यताओंके कारण ये गोविन्द भवन ट्रस्टके प्रथम मंत्री बनाये गये । ये इसी ट्रस्टके यावज्जीवन ट्रस्टी तो रहे ही, इन्होंने इस अवधिमें जिस कुशलतासे गीताप्रेसका कार्य सँभाला, वह उल्लेखनीय है । गीताप्रेसके लिये इनकी सेवाएँ सदा स्मरणीय रहेंगी ।

श्रावण शुक्ला पञ्चमी सं. २०१२ वि. तदनुसार २४ जुलाई, सन् १९५५ ई. को कलकत्तेमें इनका पक्षाघातसे देहावसान हो गया ।

प्रिय श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया,

सस्नेह यथायोग्य । आपका पत्र मिला । आपने जो भी अपनी स्थिति लिखी, हम सबकी भी यही दशा है । जगत्में हम सभी श्रीकृष्णको भूल जाते हैं। आप तो गृहस्थ हैं, क्षम्य हैं । किन्तु मैं तो गृहत्यागी सन्यासी हूँ, मुझे तो मेरे प्रियतम श्रीकृष्णके अतिरिक्त वास्तवमें कुछ भी नहीं दिखना चाहिये, परन्तु मेरी भी अभी ऐसी स्थिति नहीं हुई है । अतः सचमुच ही मैं तो अतिशय धिक्कारका पात्र हूँ ही ।

यह सत्य है कि इस विश्वमें सर्वत्र एक वे ही ठसाठस भरे हैं, परन्तु अपनी मायाशक्तिके कारण वे अनन्त, पूर्ण स्वतंत्र व्यक्तित्व बने विलस रहे हैं। सभी सन्त एवं शास्त्र एकमतसे एक ही बात कहते हैं कि जिस दिन प्रभु हमारे परमावश्यक, पूर्ण विश्वासकी वस्तु बन जावेंगे, उसी क्षण वे इस विश्वके कण–कणके अन्तरालसे हमारे सम्मुख फूट पड़ेंगे परन्तु यह होगा तभी जब हमारे लिये सब तरफका आकर्षण फीका पड़ जायेगा और वे ही सर्वोपरि परमप्रिय लगने लगेंगे । इसका उपाय भी यही है कि हम उनका स्मरण करें । यह स्मरण बार–बार अन्य वस्तुओंकी चाह वश छूटता है, परन्तु चेष्टा बार–बार पुनः–पुनः ऐसी ही हो कि

उनकी स्मृति नित्य नियमित बढ़ती ही जाय ।

मैं मानता हूँ, जिस प्रकार हम संसारके छिन जानेपर विकल होते हैं, वैसी विकलता हमारी उन्हें विस्मृत करदेनेपर कदापि नहीं होती । भावपूर्ण सच्चे मनसे उनको पानेकी पुकार होनेपर तो वे प्रकट हो ही जावेंगे परन्तु उनको सच्चे मनसे पुकारना भी हमें तभी आवेगा, जब उनकी हमें आत्यंतिक आवश्यकता होगी । जबतक किसीको प्यास नहीं लगती, तभीतक वह कूएसे दूर, इधर उधर भटकता है। आत्यन्तिक प्यासेको पानीकी पुकार किसीको सिखानी नहीं पड़ती । इसी प्रकार जबतक प्रभुकी हमें प्यास नहीं है, तभी तक यह कहना–सुनना, उपदेश एवं सत्संग, लिखना और छापना सब है । ज्यों ही प्रभुकी प्यास लगी, फिर सभी ऊपरी व्यवहार स्वभावतः ही छूट जावेंगे । एक मात्र उन्हींकी एकान्त लगन लग जायगी ।

आपने लिखा कि मान, प्रतिष्ठा, यशस्विता, धन, सम्पदा, खाने–पीने एवं परिवारमें पुत्र–कलत्रादि सभीकी आसक्तियाँ भरी हैं । सो इनके हटानेका उपाय भी मुझे तो यही समझमें आता है कि प्रभुकी आसक्ति बढ़ायी जाय । मेरा तो यही विश्वास है कि प्रभुकी आसक्ति बढ़ जानेपर मोक्षसुखसे भी वैराग्य हो जाता है, फिर ये मोहजन्य असक्तियाँ तो तुच्छातितुच्छ हैं । मैने पूर्वतः ही उल्लेख किया है कि मेरी दशा तो आपसे भी हीन है, परन्तु अनुभवी लोगोंसे जैसा सुना–समझा है, वह यही है कि भगवान्‌के प्रति आसक्ति बढ़ जानेपर मनमें ही नहीं, बाहरकी आँख भी जहाँ जाती है, वहाँ भगवान् दिखते हैं । आपको तो ज्ञात ही है कि श्रीभाईजी को सिमलापालमें खुली आँखोंसे गायमें, खंभेमें, जहाँ भी उनकी दृष्टि पड़ती, भगवान् दिखते थे ।

आपका यह कहना भी सर्वांशतः सत्य है कि भगवान्‌के अतिरिक्त और कोई वस्तु देखने लायक है भी नहीं, परन्तु क्या कहूँ अभी तो मेरा मन भी इसे पूरी तरह नहीं स्वीकारता । फिर भी यह सब होना तो पुरुषार्थसे ही सम्भव है, जब हमने ही अपने मनको संसारसे जोड़ रखा है, तो हम ही उसे जब प्रभुसे जोड़ेंगे, तो वह जुड़ेगा । प्रभु जैविक–स्वाधीनताका हनन तो करेंगे नहीं । अतः व्यर्थकी चिन्ता और हताशाको त्यागकर मनको क्षण–क्षण प्रभुके नामजप, स्वाध्याय, सत्संग, सत्कर्म आदि किसी भी साधनमें लगावें, यही मार्ग है । जीवनका प्रत्येक क्षण प्रभुके ही स्मरण–चिन्तन अथवा प्रभुके निमित्त निष्काम–कर्म करते बीते, इसीकी सतत चेष्टा बनी रहे ।

यह अनमोल मानव–जीवन समाप्त होनेके पूर्व प्रभुस्मृतिमें आपाततः डूब गया एवं मनमें प्रभु पूरे बस गये, तब तो सब कुछ हो गया, नहीं तो सब करके भी

जीवन व्यर्थ ही समाप्त हो गया, यह सर्वथा सच्ची बात है ।

आपने मेरे स्वास्थ्यके बारेमें पूछा, सो अब चौदह आने ठीक है । रोगके रूपमें प्रभु ही आये थे, जिस तीव्रतासे वे आये, उसी तीव्रतासे वे चले भी गये अवश्य ही इस कष्टभोगके रूपमें उनका मंगलमय विधान ही पूर्ण हुआ है ।

आपको श्रीसूरदासजीका एक पद भेज रहा हूँ । इस पदसे मुझे बहुत लाभ हुआ है ।

मना रे, माधव सौं करु प्रीत ।
काम क्रोध मद लोभ मोह तू छाँडि सबै विपरीत ।।१।।
भौरां भोगी बन भ्रमैरे, मोद न माने ताप ।
सब कुसुमनि मिलि रस करै, कमल बँधावै आप ।।२।।
सुनि परिमिति पियप्रेमकी, चातक चितवन पारि ।
घन आसा सब दुख सहै, अनत न जाँचे बारि ।।३।।
देखो करनी कमल की, कीन्हो रवि सौं हेत ।
प्रान तज्यौ, प्रेम न तज्यो, सूख्यौ सरहिँ समेत ।।४।।
दीपक पीर न जानई, पावक जरत पतंग ।
तनु तौ तिहिं ज्वाला जरयौ (पै) चित न भयौ रसभंग।।५।।
मीन वियोग न सहि सकै, नीर न पूछे बात ।
देखिजु तू ताकी गतिहि, रति न घटै तन जात ।।६।।
प्रीति परेवाकी गनौ, चित लै चढ़त अकास ।
तहँ चढ़ि तीय जु देखई, परत छाँड़ि उर स्वास ।।७।।
सुमिरि सनेह कुरंगको, स्रवननि राच्यौ राग ।
धरि न सकत पग पछमनौ सर सनमुख उर लाग ।।८।।
देखि जरनि जड नारिकी जरत प्रेतके संग ।
चिता न चित फीकौ भयो, रची जु पियके रंग ।। ९।।
लोक–वेद बरजत सबै, नैननि देखत त्रास ।
चोर न जिय चोरी तजै, सरबस सहै बिनास ।।१०।।
सब रसको रस प्रेम है, विषाई खोलै सार ।
तन मन धन जोबन खसै, तऊ न मानै हार ।।११।।
तैं जु रतन पायौ भलौ, जान्यौ साधु समाज ।
प्रेम कथा अनुदिन सुनी, तऊ न उपजी लाज ।।१२।।
सदा सँगाती आपनौ जियको जीवन प्रान ।

सु तैं बिसार्यौं आपनौ हरि, ईश्वर भगवान् ।।१३।।
वेद पुरान सुमृति सबै, सुर–नर सेवत जाहि ।
महामूढ अग्यान–मति, क्यों न सँभारै ताहि ।।१४।।
खग–मृग मीन–पतंग लौं, मैं सोधो सब ठौर ।
जल–थल जीव जिते–तिते, कहौं कहाँ लगि और ।।१५।।
प्रभु पूरन पावन सखा प्राननहू के नाथ ।
परम दयालु, कृपालु हैं जीवन जाके हाथ ।।१६।।
गर्भवास अति त्रासमें जहाँ न एकौ अंग ।
सुन सठ तेरो प्रान–पति तहँउ न छाँड़यौ संग ।।१७।।
दिना रात पोषत रह्यौ, ज्यौं तम्बोली पान ।
वा दुखतैं तोहि काढ़िकैं, लै दीनो पय–पान ।।१८।।
जिन जड़तैं चेतन कियौ, रचि गुन तत्व विधान ।
चरन, चिकुर, कर, नख दिये नयन, नासिका, कान ।।१९।।
असन–बसन बहु–विधि दिये, औसर–औसर आनि ।
मात–पिता, भैया मिले, नइ रुचि नइ पहचान ।।२०।।
सजन, कुटुँब, परिजन बढ़े सुत–दारा, धन–धाम ।
महामूढ विजयी भयो चित आकरष्यौ काम ।।२१।।
खान–पान परिधानमें, जोबन गयौ सो बीत ।
ज्यौं बिट परतिय सँग बस्यौ भोर भये भइ भीति ।।२२।।
जैसे सुखासौं तन बढ़्यौ, तैसे तनहिँ अनंग ।
धूम बढ़्यौ लोचन खस्यौ सखा न सूझ्यौ संग ।।२३।।
जमजान्यौ, सब जग सुन्यौ बाढ्यौ अजस अपार ।
बीच न काहू तब कियौ (जब) दूतनि दीनी मार ।।२४।।
कह जानौं कहवाँ मुऔ ऐसो कुमति कुमीच ।
हरिसौं हेत बिसारि कैं सुख चाहत है नीच ।।२५।।
जो पै जिय लज्जा नहीं, कहा कहौं सौ बार ।
एकहु अंक न हरि भजे, रे सठ 'सूर' गँवार ।।२६।।

इस पदको आप बार–बार स्मरण रखैंगे, तो निश्चय ही आपको लाभ हो सकता है । शेष क्या कहूँ ? राधा–राधा ।

(पूज्य राधाबाबाका इतना ही पत्र है । उपरोक्त पदका संकलनकर्त्ता

द्वारा भावार्थ पाठकोंकी सुविधार्थ नीचे दिया जा रहा है ।)

रे मन ! तू माधव, भगवान् श्रीकृष्णसे प्रेम कर । भाई ! ये काम, क्रोध, लोभ एवं मोहादि जिन्हें तू अपने अनुकूल (मित्र) मान रहा है, ये तेरे सर्वथा विपरीत अर्थात् शत्रु, तेरा अहित करनेवाले हैं, अतः इन्हें आजसे ही छोड़ दे । देख भाई! तनिक इस भ्रमरकी दशापर विचार कर । यह भोगासक्तिवश वन–वन कली–कलीका रस संचय करता निरन्तर भटकता रहता है, यह भोग–सुखकी वासनाके मोदमें ग्रीष्मऋतुके तापकी भी परवाह नहीं करता, किन्तु जब इसका प्रेम कमलसे हो जाता है, तो उसकी सुकोमल पंखुड़ियोंमें यह स्वयं अपने आपको बँधा लेता है, उससे मुक्त नहीं हो पाता। इसी प्रकार, हे जीव ! तू अनादिकालसे भोगोंकी वासनाओंमें सुख मानता हुआ अनेकानेक अच्छी–बुरी योनियोंमें आवागमन कर रहा है । तू भीषण त्रितापोंकी (आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक कष्टोंकी) भी परवाह नहीं करता किन्तु भ्रमरकी तरह अन्ततः मानव जन्म पाकर अब तो भगवान् श्रीकृष्णके चरण–कमलोंसे स्थायी प्रेम कर ले, उनके प्रेमबन्धनमें स्वतः बँधना स्वीकार कर ले । यही तेरी चिरशान्तिका एकमात्र उपाय है ।।१–२।।

देख भाई ! तू चातककी दृष्टिको अपना आदर्श मान । चातककी चितवनि {दृष्टि} अपने प्रियतम मेघके प्रेमकी सीमाके पार जा ही नहीं पाती। वह अपने प्रिय मेघकी आशामें सभी दुःखोंको सहता रहता है, वह प्यासमें तड़पकर मृत्युको वरण कर लेता है, किन्तु अन्यत्र पानी नहीं ढूँढ़ता ।। ३।।

अब तुझे कमलके प्रेमकी कथा कहता हूँ । कमल सूर्यसे हित, प्रेम करता है। सूर्यके तापमें ही वह खिलता है । यद्यपि सूर्य उसके आधार, सरोवरके जलको सुखा देता है, वह जलके नहीं रहनेपर सूखकर सरोवर के साथ–ही–साथ मृत्युको प्राप्त हो जाता है, परन्तु अपने रविके प्रति प्रेमको नहीं त्यागता ।।४।।

अब फतंगेका उदाहरण देखो । वह दीपकसे प्रेम करता है, दीपक फतंगेकी पीड़ाको नहीं समझता । वह फतंगेको जला डालता है, परन्तु फतंगा बार–बार दीपककी अग्निपर ही गिरता है । वह अपन तनको दीपककी ज्वालामें जला देता है, परन्तु अपने प्रेम–रसको भंग नहीं होने देता ।। ५।।

अब मीनका उदाहरण लो । मीन जलका वियोग सह नहीं सकता, वह जलसे पृथक् होते ही प्राण त्याग देता है, परन्तु जल उसकी बात ही नहीं पूछता।

मीनका प्रेम तनिक भी नहीं घटता, चाहे उसके प्राण भले ही जावें । मीन जलकी गतिकी ओर देखकर अपना प्रेम नहीं घटाता ।।६।।

इसी प्रकार, अब परेवा {कबूतर} पक्षीको देखो । वह ऊँचे आकाशमें बहुत ऊपर उड़ता है । परन्तु जैसे ही अपनी प्रिया कबूतरीको नीचे उड़ती देखता है, अपनी श्वास और उड़नेकी क्रियाको बन्दकर ऊपर आकाशसे नीचे गिरता है । उसे अपनी नीचे गिरनेसे होनेवाली क्षतिका भय ही नहीं होता ।।७।।

अब हरिण, कुरंगके प्रेमका उदाहरण देख । वह अपने कानोंके {संगीत} स्वरसे प्रेम करता है । बहेलिया बीन बजाता उसके हृदयको सामने होकर बाणसे बेंध देता है, परन्तु वह पैर पीछे नहीं करता, भागता नहीं । सम्मुख बाण खा लेता है ।।८।।

अब जड़, मूर्ख स्त्रीके प्रेमकी बात देखो । वह प्रेतके {अपने पतिके शवके} साथ जल जाती है, चिताकी ज्वाला उसके प्रेमको फीका नहीं कर पाती, वह अपने प्रियके प्रेमके रंगमें रँगी हुई जो है ।।९।।

अब चोरका उदाहरण देखें । उस लोक–वेद {शास्त्र} सब निषेध करते हैं कि चोरी मत करो । वह दूसरे चोरोंकी दशा अपनी आँखों से भी देखता है कि पकड़े जानेपर उनकी किस प्रकार निर्मम पिटाई होती है, किन्तु वह अपने मनसे चोरी करना नहीं छोड़ता, चाहे इस चोरीके पीछे उसका सर्वस्व ही नष्ट हो जाता है । ।।१०।।

अब विषयी, भोगी मनुष्यकी बात सुनो । वह सब रसोंमें स्त्री–भोगरूपी प्रेमको ही सर्वोपरि मानता है । इसमें उसका अति भोगसे तन क्षीण हो जाता है, मन भी शिथिल हो जाता है, धन नाश होता है, साथ ही उसकी जवानी भी समाप्त हो जाती है, परन्तु विषयी विषय भोगसे हार नहीं मानता, उसे छोड़ता नहीं।।११।।

अरे मूर्ख ! तूने तो भगवान् श्रीकृष्णरूपी अनमोल रत्न प्राप्त किया है। सभी साधु समाज जिन श्रीकृष्णका निरन्तर गुणवर्णन करते हैं और उन्हें सर्वोत्तम धन बताते हैं, तू रात–दिवस सत्संगमें उनके प्रेमकी कथाएँ भी सुनता रहता है, फिर भी तू उनसे प्रेम नहीं करके संसारमें फँसा है, इस पर भी तुझे लज्जा नहीं आती ।।

मना रे करु माधवसौं प्रीत
पत्र-प्रेषिति : श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया

भाई ! भगवान् श्रीकृष्ण, जो सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्डके ईश्वर {परम नियामक} हैं, इन्हींने श्रीहरिके रूपमें अवतार लेकर भक्तराज ध्रुवको कृतार्थ किया था । ये तेरे नित्यके संगी हैं । ये तेरे जीवके जीवत्व हैं, तेरे जीवन हैं, प्राण हैं, इनका तूने विस्मरण किया हुआ है । तुझे मैं क्या कहूँ ? ।।१३।।

वेद-पुराण एवं सभी स्मृतियाँ, जिनका गुणगान करती हैं, देवता और श्रेष्ठ मनुष्य सभी जिनका भजन करते हैं, अरे मूढ ! अज्ञानी !! उन्हें तू क्यों नहीं सँभालता ? ।।१४।।

सूरदासजी कहते हैं-मैंने खग {परेवा}, मृग {हरिण}, मीनं {मच्छी}, पतंग {भ्रमर}, सभीको सर्वत्र अच्छी प्रकार परखा है, जल-थलमें इतस्ततः जितने भी जीवधारी हैं और मैं क्या कहूँ, सबके एकमात्र हितू, मित्र, प्रभु श्रीकृष्ण हैं, वे सबमें परिपूर्ण भरे हैं, और सभीके प्राणोंके वे ही स्वामी हैं, वे परम दयालु कृपाके सागर हैं और सबकी जीवन-मृत्यु उनके ही हाथमें हैं।।१५-१६।।

गर्भवासके समय जब जीवका एक भी अंग-आँख, कान, हाथ, कुछ भी पुष्ट नहीं होता, जब जीव अतिशय पीड़ामें असहाय होता है, रे मूर्ख सुन ! उस समय भी तेरा वे प्राणपति श्रीकृष्ण संग नहीं छोड़ते ।।१७।।

जैसे तम्बोली दिन-रात सजग रहकर पानकी रक्षा करता है, उसी प्रकार जो पूर्ण सजग रहकर सदा तेरा पोषण करते रहते हैं वे तुझे दुःख भरे गर्भगृहसे बाहर निकालते हैं और माँके स्तनोंमें अमृतवत् दूध देकर दुग्धपान कराते हैं ।।१८।।

जिन्होंने तुझे जड़से चेतन किया है एवं तीनों गुणों {सत्त्व, रज एवं तम} तथा चौबीस तत्त्वों-(पाँच तन्मात्रा-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, पाँच भूत-आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी, दस ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ तथा मन, बुद्धि, चित्त, एवं अहंकार) की जिन्होंने रचनाकी, साथ ही पैर, हाथ, बाल, नख, नेत्र, नासिका और कान देकर तेरी सब सुरक्षाकी है, यथावसर जिन्होंने तुझे भोजन, वस्त्र, बहुत प्रकार की सामग्रियाँ दी हैं, तुझे उनके ही द्वारा माता-पिता भाई आदिके रूपमें नए-नए व्यक्तियोंकी पहचान मिली है । प्रभुकी कृपासे सहज ही तेरे कुटुम्बी और

सम्बन्धी बढ़ गये, तेरे पत्नी–पुत्र हुए, महामूर्ख ! तू जगत्में विजयी होकर अहंकारमें फूल रहा है और तेरे चित्तको अनेक कामनाओंने आकर्षित कर लिया है । तेरी सारी जवानी खाने–पीने और वस्त्रादि पहननेमें ही व्यतीत हो गयी । जैसे परस्त्रीके साथ रात बितादेनेपर जब भोर होता है, तो पहचाने जाने और लोकापवादका भय होता है, उसी प्रकार तुझे वृद्धावस्था होनेपर अब अपने पुराने किये कर्मोका पश्चात्ताप हो रहा है। सुख पाकर जैसे–जैसे तेरा शरीर सुपुष्ट होता गया, वैसे–ही–वैसे तेरे भीतर काम भी बढ़ता गया, किन्तु वृद्धावस्थाके कारण आँखोंके आगे जब अँधेरा आने लगा और नेत्रोंसे सूझ समाप्त हो गयी, इस समय तेरा कोई मित्र नहीं रहा ।।२३।।

यमराज तेरे सब कर्मोको जान रहा है, सारे संसारमें तेरा अपना अपयश हो गया है और जब यमके दूतोंने तुझे मार लगाना प्रारम्भ किया तो कोई तुझे बचाने मध्यमें नहीं आया । अरे मूर्ख ! इस कुबुद्धिके कारण तेरी बुरी मृत्यु होगी और कोई नहीं जान पायेगा कि तू कहाँ मृत्युको प्राप्त हुआ। अरे नीच ! तू भगवान्को विस्मृत कर सुख चाहता है ? ।।२४–२५।।

यदि अब भी तेरे हृदयमें अपने कुकर्मोका कुछ भी परिताप नहीं है, तो तुझे सैकड़ों बार चेतावनी देने से भी क्या लाभ है ?

श्रीसूरदासजी कहते हैं कि अरे गँवार शठ ! तूने भगवान्का एक अंक {अक्षर} भी नहीं भजन किया, तुझे क्या कहा जाय ? ।।२६।।

महाभाव–दिनमणि श्रीराधाबाबा

(तृतीय खण्ड)

(पत्राचार एवं मातृ–साधना)

अध्याय दूसरा

पत्र–प्रेषक:

प. पू. स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज

{प. पू. श्रीराधाबाबा}

पत्र–प्राप्ति

श्रीशिवभगवानजी फोगला

{सत्संग–सुधा माला}

प्रेषण–स्थल

पू. भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

की हवेली

ग्राम पो. रतनगढ़

{बीकानेर राज्य}

लेखनकाल

ई. सन् १९४१ से १९४३ तक

प्राप्ति–सूत्र

श्री शिवकिसनजी डागा

के पत्र–संग्रहसे

श्रीमुकुन्दजी गोस्वामी

द्वारा की गयी प्रतिलिपि

सार–संक्षेप

मन जब भगवान्में स्थिर हो जाता है, तब ऐसा विलक्षण, नित्य सुख मिलता है कि फिर वह कभी मिटता नहीं । वह आनन्द नित्य है, उसे प्राप्तकर जीव निहाल हो जाता है ।

x x x x

विषय–वासनाओंसे अपने मनको जब धुंधकारी हमने ही बनाया है, तो इसे सुधारना हमें ही पडेगा । जब संसारके अनर्थयुक्त सारे लंद–फंद हम कर सकते हैं, तो साधनागत थोड़ा–सा अभ्यास हमसे नहीं होता, इसका अर्थ ही है, हमारे मनने अभी भगवान्की सत्ताको महत्त्व ही नहीं दिया है ।

x x x x

यहाँ घड़ी दिख रही है, परन्तु यह सर्वथा नितान्त सत्य है कि श्रीकृष्ण ही अपनी मायासे घड़ी रूपमें दिख रहे हैं, घड़ीके स्थान पर हैं– साक्षात् श्रीकृष्ण ही । परन्तु जबतक हमारी घड़ीकी वासना नहीं मिटेगी तब तक श्रीकृष्ण घड़ी ही बने रहेंगे ।

x x x x

दुकान, मकान, कोठी, गद्दीकी जगह यदि हम श्रीकृष्णके उन कुंजोंको याद कर सकें, जो एक से बढ़कर एक सुन्दर हैं, जिनकी सुन्दरताकी छायाको सृष्टिकी समग्र सुन्दरता छू नहीं सकती, उन निकुंजोंके चिन्तनसे हम स्वयं तो शान्ति पावेंगे ही अपने आस–पास सम्पर्क में आये सभीको शान्ति दे सकेंगे ।

x x x x

संसारकी दृष्टिसे सर्वथा निकम्मा हुए बिना परमार्थका रास्ता तय नहीं हो सकता ।

x x x x

मनमें भी चिन्तन–मननके रूपमें जो कुछ आ रहा है, वह सब मात्र श्रीकृष्ण हैं, परन्तु इसे प्रत्यक्ष तभी किया जा सकता है जब हमारी चाह मायिक नहीं होकर मात्र भगवान्की हो ।

।।श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–९

आपका मन जहाँ है, वहीं आप हैं

रतनगढ़
३ मार्च १९४१ ई.

श्रीशिवभगवानजी फोगला, राधाकृष्णौ वन्दे !
(पू.श्रीस्वामीजी चक्रधरजी महाराजने यह पत्र लिखाया है)

आप पर भगवान् श्रीकृष्णकी हेतुरहित अपार अनन्त कृपा है । आपको श्रीसेठजी (जयदयालजी गोयन्दका) एवं श्रीभाईजी (हनुमानप्रसादजी पोद्दार) जैसे **महापुरुषोंका दुर्लभ संग मिला है, उनकी** आत्मीयता प्राप्त हुई है, और आपके मनमें **इनसे सत्संग प्राप्त करनेकी इच्छा** भी जाग्रत हुई है । असीम भगवत्कृपा बिना यह **सब होना संभव नहीं है।**

भक्त बालक ध्रुव भगवान्से प्रार्थना करते हैं – "मुझे आप उन निर्मलहृदय महात्मा भक्तोंका संग दीजिये जिनका आपमें अविच्छिन्न भक्तिभाव है । उनके संगमें रहकर मैं आपके गुणों, आपकी लीलाओंकी कथा– सुधाका पान करके उन्मत्त होजाऊँगा और सहज ही विविध भाँतिके दुःखोंसे पूर्ण भयंकर संसार–सागरके उस पार पहुँच जाऊँगा ।"

भक्तराज प्रह्लादजीकी भी ऐसी ही भगवान्से कामना है । वे कहते हैं – "मैं ब्रह्मलोक तककी आयु, लक्ष्मी, ऐश्वर्य, और इन्द्रियभोग सर्वथा नहीं चाहता, क्योंकि मैं जानता हूँ कि अनन्त शक्तिशाली कालका रूप धारण करके आपने उन सभीको ग्रस रखा है । अतः मुझे तो आप अपने दासोंकी सन्निधि प्रदान कर दीजिये, जिससे मैं आपकी लीला–कथाओंका पान करता हुआ आपके भक्ति–रसमें आपाततः डूबा रहूँ ।

कहनेका इतना ही मन्तव्य है कि जिन महापुरुषोंकी सन्निधिकी कामना भक्तराज प्रह्लाद एवं भक्तबालक ध्रुव करते हैं, उन सच्चे सिद्ध सन्तोंकी सन्निधि एवं आत्मीयता आपको सहज ही प्राप्त है, ऐसी महान् भगवत्कृपाके आप सहज ही भाजन हैं । कठिनाई यही है कि इसके उपरान्त भी आपका मन इन सन्तोंकी सीखको महत्व नहीं देता ।

इसे निश्चय ही सत्य मान लीजिये कि आपका मन जहाँ है, वहीं आप हैं।

आपका मन जहां है, वहीं आप हैं
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

इस बातको गाँठमें बाँध लें । श्रीभाईजीके पास रतनगढ़में अथवा स्वर्गाश्रममें बैठे हुए आप यदि कलकत्तेके व्यापारका, वहाँकी दूकानका चिन्तन करते हैं, अथवा तार–चिट्ठीसे व्यापारमें उलझे हैं तो आप असलमें कलकत्तेमें ही हैं । इसी प्रकार यदि आपका शरीर कहीं भी हो और आपका मन शरीरको छोड़कर दिव्य वृन्दावन–धामकी लीलामें है, तो आप वृन्दावन धाममें ही हैं । प्रारब्ध पूरा होने पर शरीर गिर जायगा और आप सदाके लिये उसी लीलामें सम्मिलित हो जावेंगे। सब कुछ आपकी इच्छा और आपके मन पर निर्भर है । शिवभगवान्‌जी ! इस अटूट सिद्धान्तको मानकर साधनामें लगे रहनेसे ही उन्नति संभव है ।

आपके मनकी दशाका तो मुझे ज्ञान है नहीं, किन्तु मेरा यह सुदृढ़ विश्वास है कि जिस दिन आप या कोई भी यथार्थमें चाहने लगेगा कि मेरा मन व्रजलीलामें फँस जाय, उसी क्षण अपने–आप आपको, मनको अन्यत्र प्रमादसे रोकनेकी और भगवान् तथा भगवान्‌की मधुरतम रसमयी लीलाओंमें लगानेकी नयी–नयी युक्तियाँ सूझने लगेंगी । आप स्वयं अपने मनको कैसे–क्या करें, यह सब समझ जावेंगे । उत्कट चाह होने पर सारी राहें अपने–आप ज्ञात हो जाती हैं। क्योंकि आपके अन्तःकरणमें अन्तर्यामी प्रभु निरन्तर अविच्छिन्न निवास करते हैं। ये सभी युक्तियाँ अभी नहीं उपजतीं, इसमें प्रधान कारण चाहमें कमी ही है । अभी भगवान्‌की, व्रजभावकी चाह अति क्षीण है। उत्कट चाह होने पर चाहकी पूर्तिके लिये व्याकुलता अवश्यंभावी है । जिस सीमातक व्याकुलता अपेक्षित है, वह नहीं होनेके कारण ही प्रमाद बना है । यह अवश्य है कि कभी–कभी सोडावाटरके उफानकी तरह चित्त व्रजरसकी बातें सुनना चाहता है, फिर ठंडा पड़कर पुनः संसारमें रच–पच जाता है ।

उदाहरणके रूपमें देखें–यहाँ घड़ी दीख रही है, परन्तु यह बिलकुल सत्य बात है कि इस घड़ीकी जगह श्रीकृष्ण हैं । अब जबतक आप घड़ी देखनेकी वासना नहीं मिटायेंगे तबतक श्रीकृष्ण कैसे दीख सकते हैं ? मन तो एक है और वह एक ही काम करेगा – चाहे घड़ीको देखे चाहे श्रीकृष्णको । श्रीकृष्णको देखने पर घड़ी नहीं दीखेगी और घड़ीको देखने पर श्रीकृष्ण नहीं दीखेंगे । इसी प्रकार मनसे या तो जगत्‌का चिन्तन होगा या श्रीकृष्णका । यहाँ जिस किसी पदार्थकी सत्ता है, जिसका चिन्तन आपका मन करता है, वे सभी पदार्थ भगवान्‌की मायाकी रचना हैं । यह सब उनकी लीला है । उनकी लीला भी दो प्रकार की हैं । एक अविद्या, मायामयी लीला और दूसरी चिन्मयी लीला । जबतक हम, आप या कोई भी इस मायामयी लीलाको छोड़कर उनकी उस दिव्य चिन्मयी लीलामें मन नहीं ले

आपका मन जहाँ है, वहीं आप हैं

पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

जायेंगे, तबतक यह मायामयी लीला आपको उलझाये ही रखेगी । इसमें दूसरेका कहीं कोई वश नहीं है । आप कहें कि हमसे ऐसा होता नहीं है–इसका सीधा –स्पष्ट उत्तर है कि आपके मनकी अभी चाह इस नाशमान, दुखपूर्ण, क्षणभंगुर मिथ्या, मायाको छोड़कर उस परम दिव्य शाश्वत सुखमयी लीलामें जानेकी नहीं है।

जहाँ चाह है, वहीं राह है । वास्तवमें यदि आप चाहते हैं तो आपको यह करना ही पड़ेगा । मनकी बदमाशी तो मिटानी ही पड़ेगी । चाहे शीघ्रातिशीघ्र अथवा धीरे–धीरे । आप विचार करें, मन तो जैसे आज बदमाशी कर रहा है, वह मरते समय और भी अधिक बदमाशी कर सकता है और इसका भी क्या भरोसा कि पता नहीं मन कब किसके संग फँसकर किस रंगमें रँग जाय । अनादि कालसे उस पर चढ़े रंगोंके ही कारण तो हमारी वर्त्तमानमें गयी–बीती दशा है । अतः मृत्युके पहले ही मनकी बदमाशीको पूरी तरह मिटा दें ।

प्रारंभमें कठिनाई होती है, परन्तु ऐसी–ऐसी युक्तियाँ हैं कि जिनके करने से मन वशमें होता ही है । आप करना चाहें तो मैं एक युक्ति बतलाता हूँ । परन्तु होगा सब करनेसे ही । मानलें आप 'हरे राम' महामन्त्रका जाप करते हैं । इसको जपते रहें, परन्तु प्रत्येक मन्त्रके उच्चारणके बाद एक बार आप ध्यान करें कि श्रीप्रिया–प्रियतम एक वृक्षके नीचे खड़े हैं ।

मानलो, आप देसमें रतनगढ़ ग्राममें हैं । अब सायंकाल किसी एकान्त रेतके टीबे पर चले गये । टीबे पर बैठकर देखिये–एक सड़क है, अत्यन्त सुन्दर वृक्ष लगे हैं । अब प्रत्येक वृक्ष ही वृक्ष लगे हैं । अब प्रत्येक वृक्षके नीचे आप एकबार श्रीकृष्ण एवं श्रीराधारानीको देखिये । मालाके मनके फेरते जाइये । इस प्रकार तीन माला अर्थात् वृक्षोंके नीचे ३०० बार श्री प्रिया–प्रियतमको देखकर दिव्य चिन्तन कीजिये । परन्तु आपका निश्चय इतना सुदृढ़ हो कि यह करना ही है । यदि एकमात्र यह अभ्यास ही सुपुष्ट होगया और कहीं १६ माला 'हरे राम' षोडश नाम महामंत्रकी हो गयी तो आगे मनको टिकानेमें बहुत सुविधा हो जायगी ।

युक्तियाँ तो अनेक हैं, परन्तु पहले आप एक इसी युक्तिसे करना प्रारंभ करें । आगेकी युक्तियाँ भी पीछे बतायी जा सकती हैं ।

नामजपका जो नियम चल रहा है, वह खूब कड़ाईसे पालन करें। घरमें सबको यथायोग्य । आज इतना ही ।

राधा राधा राधा राधा

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।
पत्र संख्या–१०

व्रज–सम्बन्धी पाँच हजार वस्तुओंका ध्यान करें

रतनगढ़
ता. १५–३–१९४१ ई.

प्रिय श्रीशिवभगवानजी फोगला, मोतीलाल पारीकके यथायोग्य
(पू. स्वामीजी श्रीचक्रधरजी महाराजने लिखाया है)

आपका पत्र मिला । आप तत्परतापूर्वक चिन्मय दिव्य लीलाभावना करते हैं एवं कलकत्तेमें गंगाके किनारे प्रातः–सायं बैठकर गंगाजीमें दिव्य चिन्मय यमुनाकी भावना करते हैं, सो उत्तम बात है।

आप षोडश नाम महामंत्रकी बत्तीस मालाका नियम अनवरत पालन कर रहे हैं, वह करते रहें, किन्तु लगातार तीन–चार घण्टे बैठकर ब्रज– सम्बन्धी पाँच हजार चीजोंको अवश्य याद करें । चाहे मन कितनी ही बदमाशी करे, एक–एक, दो–दो सैकिण्डके लिये ही सही, इन पाँच हजार ब्रज–भाव सम्बन्धी वस्तुओंको अवश्य स्मरण करें । इसके लिए एक किताब बनाकर अपने पास रख लेनी चाहिये। साथ ही एक–दो–तीन ऐसे अंक लगाकर, जैसे पाठ किया जाता है, वैसे एक–एक चीजको पढते जाना चाहिये । इन सभी वस्तुओंका चाहे एक–एक सेकिण्डके लिये ही सही, मनमें चित्र बाँधते जाना चाहिये । जिह्वासे भगवन्नाम महामंत्रका जाप तो होता ही रहे । होता यह है कि मन भागने लगता है, परन्तु यदि नियमपालनमें कठोरता एवं दृढ़ता रही और वर्षभर भी दृढ़तापूर्वक नियम पालन किया तो नियमके कारण अभ्यासवश मनको ठीक उसी समय प्रतिदिन इन पाँच हजार वस्तुओं और स्थानों पर आकर क्षणभरके लिये ही सही, ठहरना ही पड़ेगा । पर बिना नागा इस नियमको निबाहनेसे ही सफलता मिलेगी । हाजिरी, मुलाहिजा, शिष्टाचारके फेरमें पड़नेसे तो कोई नियम सध नहीं सकता ।

व्रज–सम्बन्धी पाँच हजार वस्तुओंका ध्यान करें
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

आपने लिखा कि पाँच हजार वस्तुओंकी सूची मैं बना दूँ, सो पहले आप यह पूर्व–पत्रमें लिखा तीन माला वाला नियम तो आज या कलसे प्रारंभ कर ही दें और इसे खूब कड़ाईसे बिना नागा पालन करें ।

शिवभगवानजी ! विषयोंमें सर्वथा सर्वांशमें सुख नहीं है, फिर यह सुखकी भ्रान्ति भी क्यों होती है, इसका रहस्य मैं आपसे निवेदन करता हूँ । मानलें, खूब जोरसे भूख लगी है, अब भोजनके समय बहुत आनन्द मिलता है। वस्तुतः यह जो आनन्द मिलता है वह भोजनकी वस्तुओंसे सर्वथा नहीं मिल रहा, वह मिलता है भगवान्से, जो हमारे अन्तःकरणमें बैठे हैं। होता यह है कि मनमें जब अति उत्कट इच्छा होती है कि कुछ भोजन मिले तो जब इस इच्छाकी पूर्ति होती है तो कुछ देरके लिये मनकी चंचलता मिट जाती है। अब तक जो मन भोजनके लिये व्याकुलतावश चंचल था, अब भोजन पाकर शान्त स्थिर हो जाता है । स्थिर मन पर आत्माका सुख प्रतिबिम्बित होने लगता है । बस, मनुष्यको आनन्दका अनुभव होने लगता है । वास्तवमें आनन्द जो आया है, यह भोजनसे नहीं– परमात्माके आनन्दकी छाया मन पर पड़ी है, इससे अनुभव हुआ है ।

इसी बातको सभी विषयोंके सम्बन्धमें समझ लेना चाहिये । किसी भी विषयकी इच्छा हुई और जब वह इच्छा पूर्ण होने लगती है, तब उतनी देरके लिये मन स्थिर हो जाता है । मन स्थिर होते ही आत्माकी छाया उस पर पड़ने लगती है, मनुष्य मूर्खतावश मान लेता है कि अमुक विषयसे मुझे सुख मिला । अवश्य ही इस बात पर विश्वास होना कठिन है, परन्तु सत्य यही है कि संसारमें जितना भी सुख किसीको भी यदि कभी मिला था, मिलेगा अथवा मिल रहा है, सब घन आनन्द–स्वरूप परमात्मासे ही प्राप्त होता है ।

इसीलिये शिवभगवानजी, मनको स्थिर करनेकी आवश्यकता है । यही मन जब भगवानमें स्थिर हो जाता है, तब तो ऐसा विलक्षण नित्य सुख मिलता है कि फिर वह कभी मिटता ही नहीं । वह आनन्द नित्य है, उसे प्राप्त कर जीव निहाल हो जाता है । इसलिये मैंने जो आपको उपाय पूर्व पत्रमें लिखा है, वह प्रतिदिन अवश्य करें । लीलामें मन लगानेमें कोई परिश्रम नहीं है, परन्तु यदि कोई कहे कि हमसे नहीं होता, इसका मेरे पास कोई उत्तर नहीं है ।

जब संसारके सारे अर्थजन्य लंद–फंद आप कर सकते हैं, और यह साधारण सा अभ्यास आपसे नहीं होता, इसका अर्थ ही है कि आपके मनने अभी भगवान्की सत्ता और साधनाको महत्व ही नहीं दिया है । विषय वासनाओंसे अपने मनको जब धुंधकारी हमने ही बनाया है तो इसे सुधारना हमें ही पड़ेगा।

सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) एवं भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी

पोद्दार) सचमुचमें ही भगवत्कोटिके बहुत ही उच्च महापुरुष हैं, परन्तु शास्त्र कहते हैं कि भगवानमें मन लगाये बिना तो संसार–सागरसे पार होना असंभव ही है ।

वारि मथे घृत होउ बरु सिकताते बरु तेल ।
बिनु हरि–भजन न भव तरिअ यह सिद्धान्त अपेल ।।

मेरा तो इतना ही नम्र निवेदन है कि भजन करिये । नाम–जपके समान सारे कलिमलको तुरन्त धोनेका साधन मेरी दृष्टिमें अन्य कोई नहीं । सन्त सब कुछ कर सकते हैं, परन्तु वे हमारे आधीन तो हैं नहीं । वे तो भगवान्‌के हाथके यंत्र हैं और भगवान्‌के मनसे वे मनवाले हैं । वे एक क्षणमें सहज ही सारे संसारका कल्याण कर सकते हैं, परन्तु उनकी सामर्थ्य हमारे प्रयोजनमें कब आयेगी, इसका क्या भरोसा ? नाम–भगवान् तो हम पर अभी कृपा करनेको तत्पर बैठे हैं । अतः उनका सत्कार करिये और सब प्रमाद त्यागकर नामरसमें डूब जाइये ।

आज इतना ही । शेष दूसरे किसी दिन लिखूँगा ।

राधा राधा राधा राधा

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।
पत्र संख्या–११

जपके साथ लीलाओंका ध्यान करें

रतनगढ़
तिथि अज्ञात

श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सप्रेम राधास्मरण । (पू. श्रीस्वामीजीने लिखाया है) अनादिकालसे विषयोंके संस्कार मनमें हैं । इसीसे विषयोंकी इच्छा बरबस मनको झकझोरती है। प्रत्येक विषयकी कामनाके साथ ही मन उसकी पूर्त्तिके लिये व्याकुल हो उठता है। पूर्ति हुई, व्याकुलता मिटती है, परन्तु वह थोड़ी ही देरके लिये मिट पाती है । बात यह है कि मन तो एक दर्पण की तरह है । जैसे हिलते हुए दर्पणमें मुख नहीं दिखता, स्थिर होने पर दीखने लग जाता है, वैसे ही चंचल मनमें आत्माका सुख प्रतिबिम्बित नहीं होता । विषय कामनाकी पूर्त्ति होने पर मात्र थोड़ेसे कालके लिये मन–दर्पण हिलना स्थगित करता है, जब वह शान्त होता है तो उस पर आत्माका प्रतिबिम्ब पड़ता है । परन्तु कुछ ही क्षणके बाद दर्पण पुनः हिलने लगता है। इसी तरह विषयकी पूर्ति, सुख, फिर विषयेच्छा, फिर व्याकुलता यह चक्कर चलता ही रहता है । असलमें मन दर्पण पर आत्माकी मात्र छाया ही पड़ती है, अतः सुखकी भी छाया ही जीवको मिलती है असली सुख नहीं । असली सुख–स्वरूप तो वह स्वयं आत्मवस्तु है जिसकी छाया जीवके मन–दर्पण पर पड़ती है । वह परम वस्तु है स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ।

अतः अपने मनका लक्ष्य भगवान् श्रीकृष्णको ही बनाना चाहिये । मनमें संसार और विषय तो पहलेसे ही पूरे भरे हुए हैं । अब इन्हें और अधिक भरनेसे लाभ ही क्या है ? यह नया मैल ही तो और बढ़ेगा । इन दुकान–मकान–कोठी–गद्दीकी जगह यदि श्रीकृष्णके उन कुंजोंको याद कर सकें, जो एक–से–एक बढकर सुन्दर हैं, जिनकी सुन्दरताकी छायाको भी संसारके सुन्दर–से–सुन्दर बगीचे नहीं छू सकते, उन निकुंजोंमें आप मन फँसायें तो कितना लाभ हो । उस अवस्थामें आप स्वयं तो शान्ति पावेंगे ही, अपने पास रहनेवालोंको भी शान्ति दे सकेंगे।

इसके लिये लीला–वस्तुओंके पाठका नियम लेकर साधना करनी पड़ती है।

एक वाक्य पढा और फिर उस चीजका एक सैकिण्ड मनमें चित्र बाँधकर देख लिया। फिर दूसरा वाक्य पढा, उस वस्तुका चित्र बाँधकर देख लिया। यह पाठ जिस दिन पाँच हजार वस्तुओंका लगातार पूरा हुआ कि लगातार छः घण्टे लीलाका ध्यान हो जायगा। जैसे –

१. राधाकुण्डका जल चमचमा रहा है।
२. कुण्डपर कमलके फूल हैं।
३. कमलके पत्ते हरे–हरे चौड़े हैं।
४. नीले–लाल–उजले–तीन तरहके कमल हैं।
५. कमलके फूलों पर काले–काले भौंरे मँडरा रहे हैं।
६. पदनके कारण कमलकी डंडी हिल रही है।
७. कमलके फूलके पास एक हंस बैठा है।
८. हंस उजले रंगका है।
९. हंस बोल रहा है।
१०. राधाकुण्ड बहुत लम्बा–चौड़ा है।
११. पूर्वकी ओर करीब एक फर्लांग लम्बा है।

इस प्रकार प्रतिदिन नियम करना चाहिये, आनन्द आये या नहीं आये। मनकी बदमाशीसे कभी–कभी जी ऊबेगा। परन्तु तुले रहने पर मन फिर लगने लगेगा।

और भी युक्तियाँ हैं, जैसे भागवतका पाठ करना है। पाठ करते समय निश्चय कर लीजिये कि प्रत्येक श्लोक पर एकबार प्रिया–प्रियतमकी छविका चित्र मन पर अंकित करना ही है। जब एक बार प्रिया–प्रियतमकी छबिका चित्र बँध जाय, तब आगे दूसरा श्लोक पढना प्रारंभ करेंगे। इस प्रकार यदि बारह अध्याय पाठका नियम हो तो तीन घण्टे ध्यान हो जायगा। परन्तु होगा लगनसे करने पर ही।

आपने लिखा कि जितनी लगन व्यापारकी उलझनोंमें होती है उसका एक प्रतिशत भी प्रिया–प्रियतमके चिन्तनमें नहीं होती। सो लगनके लिये, तत्परताके लिए भगवान्‌से प्रार्थना ही मात्र उपाय है।

नींद खुलते ही हृदयसे श्रीप्रियाप्रियतमसे निवेदन करें कि अब जीवन आपके हाथमें है और फिर एक रूमाल बराबर पास रखें, उसमें गाँठ बाँध दें। गाँठ देते समय यह पद गाते रहें –

नंदलाल सौं मेरो मन मान्यौ, कहा करैगो कोयरी।
हौं तो चरन कमल लिपटानी, होनी होय सो होयरी॥

गृहपति मात–पिता मोहि त्रासत, हँसत बटाऊ लोगरी ।
अब तो जिय ऐसी बनि आई, बिधना रच्यौ संयोगरी ।।
जो मेरो यह लोक जायगो अरु परलोक नसाय री ।
नंदनंदनकौं तऊ न छाँडौं मिलूँगी निसान बजायरी ।।
यह तनु धरि बहुरौ नहिं पैये बल्लभ वेष मुरार री ।
परमानन्द स्वामीके ऊपर सरबस डारौं वार री ।।

यह परमानंदजी का पद पढ़कर रूमालमें बँधी गाँठ पर ध्यान रहे । अब जहाँ जायें, कहीं बैठें, रूमालको सामने रखे रहें । बार–बार निश्चय दृढ़ करते रहें, हमें यही करना है । चाहे सारा संसार जल जाय, हमारा सबकुछ नष्ट होजाय, परन्तु हमें प्रियाप्रियतमको रिझानेका बस यह एक ही काम करना है । दिन भर वह गाँठ सामने रहे, प्रातःकाल फिर उठकर उसे खोलें। खोलकर पदगान करते हुए गाँठ बाँध दें । इससे बड़ी सहायता मिलती है। किसीको पता भी नहीं चलता कि गाँठ किसलिये है । रूमाल है, किसी कामके लिये गाँठ दी होगी अथवा कोई चीज बाँधी हुई होगी – लोग यही समझेंगे । परन्तु वह रूमाल अपने हाथमें रहे अथवा सदा सामने पड़ा रहे। जहाँ गये हाथमें लेकर बैठे रहे। इससे प्रियतम श्रीकृष्णसे आप घुलमिल जायेंगे ।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं, मैं नाहिं ।
प्रेम गली अति साँकरी ता में द्वै न समाहिं ।।
प्रेम न बाड़ी नीपजै, प्रेम न हाट बिकाय ।
राजा परजा जेहि रुचै सीस देय लै जाय ।।
कबिरा खडा बजारमें लिये लुकाठी हाथ ।
जो घर फूँकै आपनो चलै हमारे साथ ।।
प्रेम पंथ अतिही विकट, देखत भाजैं लोग ।
कोउक बिरले चलि सकैं जिन त्यागे सब भोग ।।

शिवभगवानजी ! संसारकी दृष्टिसे बिलकुल निकम्मा हो जाना पड़ता है, तब परमार्थका रास्ता तय होता है । एक दिन तो सब छूटेगा ही, फिर इससे बडी मूर्खता क्या होगी कि हम ऐसे नश्वर पदार्थोंके पीछे अनमोल मानवजन्म व्यर्थ खो दें । पर खो रहे ही हैं । विषय अनादिकालसे मनमें धँसे हुए हैं । अनादिकालसे लिये जारहे अनन्त जन्मोंमें मन एक बार भी भगवान्‌में नहीं फँसा। नहीं तो अबतक कबके विषय स्वाहा होगये होते। श्रीललितकिशोरी पहले करोड़पति थे । परन्तु जब वैराग्य हुआ और प्रिया–प्रियतमका रंग चढा तब उन्होंने गाया–

जपके साथ लीलाओंका ध्यान करें
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

बन बन फिरना बेहतर हमको, रतन भवन नहिं भावै है ।
लता तरे पड़ रहनेमें सुख नाहिन सेज सुहावै है ।।

श्री नारायणस्वामी तो कहते हैं –

जाहि लगन लगी घनश्याम की ।
धरत कहूँ पग परत कितैहू, भूलि जाय सुधि धामकी ।।
छबि निहार नहीं रहत सार कछु, निसि–दिन पल–छिन–जामकी ।
जित मुँह उठै तितै ही धावै, सुरति न छाया–धाम की ।।
अस्तुति निंदा करो भले ही, मेंड तजी कुल–ग्राम की ।
नारायन बौरी भई डोलै, रही न काहू कामकी ।।

शिवभगवान जी ! इन सबको जीवनमें उतारनेसे काम बनता है । बातें करनेसे नहीं । हम, आप दिन–रात संसार में रचे–पचे हैं । संसारमें तनिक भी खरौंच नहीं लगे और हलुवेकी तरह भगवान् और प्रिया–प्रियतमकी प्रीतिको गटक लेना चाहते हैं, सो वर्त्तमानमें तो ऐसा होना लगता नहीं है ।

राधा राधा राधा राधा

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–१२

भगवान् सर्वत्र हैं

श्री शिवभगवानजी फोगला ! रतनगढ़

७–४–४१

आपका पत्र मिला । श्रीभाईजीका स्वास्थ्य इधर कुछ ठीक नहीं है। मस्सेकी तकलीफ रहती है । उन्होंने आपका पत्र पढ़ लिया है ।

मेरा तो यह सुदृढ मत है कि मनसे एक ही काम होगा । भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन अथवा विषयोंका चिन्तन । आपको विश्वास कैसे करादूँ ? परन्तु यदि किसीका शास्त्रों पर विश्वास हो तो वह भली प्रकार मान सकता है कि भगवान् सर्वत्र हैं । "भगवान् सर्वत्र हैं" – इस सिद्धान्तसे प्रायः सभी शास्त्र भरे पड़े हैं । भक्तराज प्रह्लादजीके लिये वे भगवान खंभेमें से निकल पड़े । यदि कोई सच्चा विश्वासी भक्त हो तो आज भी भगवान् श्रीकृष्ण अपने मुरली–मनोहर रूपमें खंभेंसे निकल सकते हैं । आपके कलकत्तेकी गद्दी अथवा रतनगढ़की हवेलीके प्रत्येक खंभेमें श्रीकृष्ण हैं, परन्तु जबतक मैं अथवा आप खंभेमें, मकानमें, गद्दीमें मन फँसाये रखेंगे, तबतक श्रीकृष्ण क्यों आने लगे ? वे तो चाहने वालेके सामने आते हैं । आप या कोई भी जब कहता है कि "हे भगवान् ! मकान नहीं छूटे, धन नहीं छूटे, रुपये–पैसे, पुत्र–परिवार बने रहें, बढते रहें"–तो श्रीकृष्ण कहते हैं "यह मुझसे मेरे श्रीकृष्ण रूपमें प्रेम नहीं करता, यह तो मेरा मायावी क्षणभंगुर रूप धन, पुत्र, मकानको चाहता है, तब मै अपने असली रूपमें क्यों आऊँ ?"

सारांश यही है कि भगवान् श्रीकृष्णको कहीं अन्यत्र ढूँढने जानेकी आवश्यकता नहीं है । आवश्यकता है मनसे सब कुछ निकालकर उनमें मन फँसा देनेकी । फिर जो भी यथार्थ वस्तु है, वह सामने आ ही जायेगी–संसारमें जो कुछ भी देखने–सुननेमें अथवा मनसे भी चिन्तन–मननके रूपमें आरहा है – सब श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्ण हैं, दूसरी वस्तु है ही नहीं, परन्तु इसे प्रत्यक्ष तभी किया जा सकता है, जब हमारी चाह मायिक संसारसे सर्वथा हटकर भगवान्‌के प्रति होजाय ।

ऐसा होते ही तो भगवान् प्रत्यक्ष हो जायेंगे और आप निहाल हो जावेंगे। श्रीगोपीजनोंकी यही दृष्टि थी । उन्हें भगवान्‌की एकांगी चाह थी अतः उनकी

जहाँ दृष्टि पड़ती थी, वहीं श्रीकृष्ण उन्हें प्रत्यक्ष होजाते थ ।

जहाँ तक हमारा एवं आपका सवाल है सर्वथा ही अंधेरखाता है । हम गीताका पाठ करते हैं, परन्तु उसके श्लोकों पर विश्वास नहीं । विश्वास होना भी कठिन है, क्योंकि हमारी जब चाह ही संसार है, भगवान्के स्थान पर दिन–रात भोगोंको प्राप्त करनेकी लगन लगी है, तब चाह हो भी कैसे ? मनमें परिताप एवं जलन होती, तब तो भगवान्के सम्मुख प्रार्थना भी निकलती । भगवान्के सम्मुख तो हम रो रहे हैं संसार जनित बढोतरीके लिये । संसार बना रहे, वह नष्ट नहीं हो, इसकी चिन्ता हमें दिन–रात घेरे रहती है । तब भगवान्के लिये रोना भी कैसे हो ? भगवान्के भजन–ध्यानकी बात सुननेपर केवल मुखसे भलेही कोई कहे–"अच्छी बात है ।" परन्तु भीतरसे वह उन बातोंको अपने लिये फालतू और बेकार ही समझता है। अधिकांश तो भगवान्को झूठ ही समझते हैं । नहीं तो, विषय नहीं छूटने पर मन चौबीसों घण्टे रोता रहे।

देखिये ! आप, हम, सभी इस बातका अनुभव करते हैं कि ज्योंही हम भगवान्से हटते हैं, हमारी अशान्ति बढ जाती है । एक बार ही नहीं, करके देखलें, बार–बार यही बात होगी । संसारमें लगते ही घोर अशान्ति, चिन्ता, दुःख एवं कामनाओंकी ज्वालासे हम घिर जाते हैं । पर फिर भी जैसे कुत्तेकी पूँछ सीधी होती ही नहीं, वैसे ही हम विषयोंके मैलेसे निकलना ही नहीं चाहते। वस्तुतः हम सभीकी बड़ी ही दयनीय स्थिति है ।

अभी तो हमारी इन्द्रियाँ क्रियाशील हैं, थोडी–बहुत साधना हमसे हो सकती है – सफलता भी मिल सकती है । मानलें कुछ भी सफलता नहीं मिले फिर भी रातको सोते समय मनमें यह अपूर्व शान्ति तो रहेगी ही कि हमने भगवान्में मन लगानेकी आज दिनभर इतनी चेष्टा तो कर ली ।

इसीलिये जपमें संख्या रखनेकी बात कही जाती है । आप करके देखें – जिस दिन भी बीस माला जपते हुए ध्यानकी चेष्टा होगी, उस दिन मन सात्विक आनंदसे भर जायगा कि आज मैंने श्रीप्रिया–प्रियतमको दो–हजार बार याद करनेकी चेष्टा तो की । कमसेकम पन्द्रह सौ बार स्मरण तो हुआ ही होगा। "ओह ! पन्द्रह सौ बार आज भगवान् याद आये ।" बस, यह संख्या आनन्दमें डुबो देगी । फिर संख्या बढ़ेगी । जिस दिन पाँच–हजार बार या अधिक सफल चेष्टा होगयी तब तो और भी आनन्द आयेगा । आप जाँच करके देख लीजिये। सचमुच बहुत ही आनन्द आयेगा। परन्तु होगा सब कुछ मात्र जैसे बताया है, उस प्रकार करनेसे । मालाका नाम–जपके साथ एक मनका गिरा कि उसके साथ–ही–साथ भगवान्के ध्यानकी एक झाँकी चित्तमें बाँधनेकी चेष्टा हुई । इस प्रकार एक माला

पूरी होते ही मनमें यह स्फुरणा होगी कि "सौ बार भगवान्के स्मरणकी चेष्टा हुई अच्छा, बीस बार ठीक नहीं हुई होगी, अस्सी बार तो ठीक हुई ही होगी । अहा कितना आनन्द है, कितने सौभाग्यकी बात है – मुझे अस्सी बार श्यामसुन्दर और राधारानी याद आये । नहीं, नहीं, आज अस्सी बार प्रिया–प्रियतम मेरे मनमें आ गये ।" इस प्रकार प्रत्येक माला आपके जीवन को उत्तरोत्तर आनन्दसे भर देगी। पर यह बात होगी लगनसे करने पर तथा विषयोंको भस्म कर डालनेकी दृढ़ धारणा करके चलने पर ।

शिवभगवान जी ! केवल बातोंसे कुछ नहीं होता । पथ चलकर ही पूरा किया जा सकता है । भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) एवं सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) जैसे व्यक्ति भी अपनी यात्रा चलकर ही पूरा किये हैं । हम जहाँ हैं, जो भी हमारी स्थिति है, वहींसे हम सभीको उठना है और भगवत्कृपाका आश्रय लेकर कदम आगे बढाने पर ही लक्ष्य हमारे सामने आवेगा। और क्या कहूँ ।

राधा राधा राधा राधा

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–१३

अपने तो मात्र भगवान् हैं

रतनगढ़

प्रिय श्रीशिवभगवान जी ! ता. २०–४–४१

सादर सप्रेम राधाकृष्णौ वन्दे ।

आपका पत्र मिला । आपने मेरे बारेमें कुछ व्यक्तिगत प्रश्न किये, उनका उत्तर आपको क्या दूँ । मैं अपने बारेमें अधिकांशतः सोचता ही नहीं हूँ। कभी–कभी लोग पूछते हैं कि आपका स्वास्थ्य कैसा है ? कभी–कभी भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) भी पूछ बैठते हैं – "बाबा ! आप स्वस्थ हैं न ?" तब मनमें आता है 'स्वस्थका क्या' अर्थ है ? फिर सोचता हूँ , व्याकरणके अनुसार तो 'स्व' 'स्थ' अर्थात् जो 'स्व' में स्थित हो, वह स्वस्थ है। फिर सोचता हूँ मेरे 'स्व' कौन हैं ? मेरे अपनेके अपने तो श्रीकृष्ण हैं । दूसरी श्रीराधारानी हैं । और कौन हैं ? मन उत्तर देता है–श्रीगोपीजन हैं, और कौन है ? श्रीनित्य–दिव्य वृन्दावन धाम है । और भी अनेक बातें मनमें लहरकी तरह उठती हैं । सब बातें तो मैं किसीको भी बता ही नहीं सकता। परन्तु इन्हीं बातों पर आप भी विचार करें तो आपको ठीक लगेगा कि इन चारोंके सिवा और कोई भी वस्तु आपकी भी नहीं है । जो आपकी है, वह मरनेके बाद भी आपकी रहनी चाहिये । यहाँके तो धन, पुत्र, स्त्री, पद, गौरव–सभी यहीं छूट जायेंगे, यहाँ तक कि शरीर भी छूट जायगा। ये वस्तुएँ आपकी तो हैं नहीं । किन्तु श्रीकृष्ण, राधारानी, गोपीजन एवं वृन्दावनधाम–इन चारोंको देखिये – श्रीश्यामसुन्दर कभी नहीं छूटेंगे, राधारानी कभी नहीं छूटेगी, श्रीगोपीजन कभी नहीं छूटेंगे, वृन्दावन भी कभी नहीं छूटेगा । ये नित्य हमारे साथ रहते हैं । इनका कभी विनाश, वियोग होता ही नहीं, हो सकता ही नहीं । वे बार–बार हमारे मनमें आते हैं, यह इनकी हम पर अपार दया है । परन्तु जब हम इन्हें पराया मानकर छोड़ देते हैं और सर्वथा परायी मायाजनित वस्तुओंको अपनी मान इनके स्थान पर उनकी चिन्ता करते हैं, तब फिर ये छिप जाते हैं । ये सोचते हैं – अच्छी बात है, भाई ! तुम हमें चाहते ही नहीं तो क्या करें । तुम याद करते हो, याद करते ही हम तुम्हारे मनमें आकर उपस्थित हो जाते हैं, परन्तु हमारे आनेके बाद भी फिर तुम हमको तो मायासे ढँक देते हो, और हमारी जगह स्त्री–पुत्र–धनको बैठा देते हो । तब बोलो हमारा वश

अपराध है ?

आपने लिखा कि श्री जयदयालजी निष्काम भावको सर्वोत्तम मानते हैं किन्तु आपका मन सकाम भावसे निज सुख और कल्याणके लिये ही भगवान्‌को पकड़ता है, सो मेरी रायमें भगवान् पर विश्वास होना चाहिए । भगवान् पर विश्वास होते ही सब काम बना–बनाया है । सकाम–निष्कामकी बात नहीं है । बात है भगवान्‌का भजन करनेकी । विश्वासपूर्वक भगवान्‌को स्मरण करनेकी । फिर चाहे किसीभी कामनासे हम भगवान्‌को क्यों न भजें, हमको भगवान् ही मिलेंगे ।

श्रीमहाप्रभु चैतन्यदेवके समान प्रेमकी शिक्षा देनेवाला तो और कौन हो सकता है ? उन्होंने एक जगह स्वयं अपने प्रिय–से–प्रिय शिष्य श्री सनातन गोस्वामीको शिक्षा देते हुए कहा था –

अन्य कामी यदि करे कृष्णेर भजन ।
ना माँगिलेओ श्रीकृष्ण तारे देन स्वचरण ।।
कृष्ण कहे आमाय भजे माँगे विषय सुख ।
अमृत छाँड़ि माँगे विष एइ बड़ मूर्ख ।।
आमि विज्ञ एइ मूर्खे विषय केन दिब ।
स्वचरण दिया एइ विषय भुलाइब ।।

यदि मनुष्य किसी दूसरी कामनासे भी श्रीकृष्णका भजन करे तो श्रीकृष्ण न माँगने पर भी उसे अपने चरण ही दे डालते हैं । श्री कृष्ण कहते हैं यह मेरा भजन तो करता है पर माँगता है विषय–सुख ! यह अमृत छोड़कर विष माँगता है । देखो तो, यह कितना मूर्ख है । किन्तु मैं तो मूर्ख नहीं हूँ, मैं तो सबकुछ जानता हूँ । किस बातमें इसका मंगल है, किसमें अमंगल है, मुझसे तो कुछ भी छुपा नहीं है । मैं भला जान–बूझकर इसका हितैषी होकर भी इस मूर्खको विषय देकर कैसे टाल दूँ ? मैं तो इसे अपने चरणोंका प्रेम देकर इसके विषय प्रेमको नष्ट कर दूँगा ।

श्रीशिवभगवान जी ! आप पर अनन्त भगवत्कृपा होते हुए भी आपको प्रभुमार्गमें सफलता तो तभी मिलेगी जब उनका निरन्तर भजन आपके द्वारा होगा। उनका स्मरण किये बिना और अन्य कोई मार्ग है ही नहीं । आप करते नहीं, यही कमी है । वास्तवमें आप चाहते ही नहीं, तब क्या हो ?

सभी इष्ट मित्रोंको मेरा राधाकृष्ण स्मरण।

राधा राधा राधा राधा

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–१४

नाम–जप सब कार्य कर देगा

रतनगढ़

श्रीशिवभगवानजी फोगला ! ता. ७ मई १९४१

सादर सस्नेह राधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र यथासमय मिल गया था। मैंने उसे बहुत मनोयोगपूर्वक पढ़ा है । आपने लिखा कि सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका जैसे सन्तको पाकर भी आपका जीवन क्यों नहीं सुधर रहा ? सो दो ही बातें हो सकती हैं । श्री सेठजी जयदयालजी सच्चे सिद्ध सन्त हैं इसमें तो कोई सन्देह नहीं है । हाँ ! आपकी भगवान्‌की चाहमें ही कमी हो सकती है। सत्यमें कोई विकल्प हो, यह संभव ही नहीं है । या तो हम जिसे सन्त मानते हैं, वह सन्त ही नहीं है । या हमारी चाहमें कमी है । श्री गौरांग महाप्रभुकी कोटिका शक्तिवाला कोई सन्त हो तो आपका काम बन सकता है । परन्तु उसमें भी "सब धान बाईस पसेरी" नहीं होगा। अधिकारीके अनुरूप एवं श्रद्धा तत्परताके कारण तारतम्य हो ही जायगा । श्री गौरांग महाप्रभुने मल्लाहको भी प्रेम–दान दिया और रूप, सनातन, रघुनाथ – इन तीनों गोस्वामियोंको भी । परन्तु क्या इन सबको समान भगवत्प्रेम मिला ? मल्लाहमें बीज बोया गया और गोस्वामियोंमें फल लगा दिया गया ।

एक व्यक्ति मानलें, सर्वशक्तिमान है । उससे एक व्यक्ति चाहता है बस, अपना सबकुछ न्यौछावर भले हो जाय, परन्तु उस व्यक्तिकी सच्ची आत्मीयता उसे मिल जाय । दूसरा चाहता है – हमें तो उस सर्वशक्तिमान व्यक्तिसे मात्र रोटी–कपड़ा मिलता रहे । तीसरा चाहता है – हमें तो खूब मान–सम्मान प्राप्त हो । चौथा केवल उसकी सेवा चाहता है । अब वह व्यक्ति है तो बड़ा ही प्रेमी। उसके पास जो बढ़ियासे बढ़िया चीज है, वही वह सबको देना चाहता है, परन्तु लेनेवाला जब उसकी अनमोल प्रेमभरी वस्तुका ग्राहक ही नहीं तो वह व्यक्ति सोचता है – "क्या हर्ज है, तुम जो चाहोगे वही हम तुम्हें देंगे ।" अब बताओ, इसमें उसका क्या अपराध है ?

नाम–जप सब कार्य कर देगा
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

आपने लिखा कि आपमें तो मात्र प्रेमकी ही चाह है । सन्त से अन्य कोई चाह नहीं है । यदि ऐसी बात है तो यह बड़े ही सौभाग्यकी बात है। परन्तु उस इच्छाको छिपाये रखकर जीभसे निरन्तर भगवन्नाम लीजिये । इसमें कोई परिश्रम नहीं । फिर देखियेगा, यह इच्छा आगकी तरह बढने लगेगी । इसमें प्रयत्न करने पर निश्चय सफलता होगी । आप कहेंगे–मन लगना कठिन है, ठीक है, मन नहीं लगे न सही, परन्तु जीभसे भगवन्नामका उच्चारण तो चाहने पर अवश्य होगा । आप एक ही काम करें, शेष सब भगवान् करेंगे– यह काम है जीभसे निरन्तर भगवन्नाम जप । अवश्य ही यह भगवत्कृपा पर निर्भर है । परन्तु विश्वास कीजिये, भगवान्की आप पर पूर्ण कृपा है और आप दृढ़तापूर्वक चाह भर करलें तो यह भगवन्नामकी साधना आपसे निश्चय ही हो सकती है । यदि कोई कहे कि हमसे तो नहीं होरही तो समझ लीजिये कि वह ऐसा कहनेवाला नाम लेना ही नहीं चाहता। श्रीभाईजी {हनुमानप्रसादजी पोद्दार} ने मुझसे एक बार स्पष्ट कहा था कि "भगवान् भले ही दूसरी प्रार्थनाएँ सुननेमें थोड़ी देर भी करदें, परन्तु यदि कोई सचमुच चाहे कि मुझसे निरन्तर नाम–जप हो और इसके लिये भगवान्से प्रार्थना करे तो वह प्रार्थना निश्चय ही तत्क्षण पूरी हो जायेगी ।" अतः भगवत्कृपाका अवलम्बन लेकर आप पूरी शक्ति लगाकर जुट जाइये । शक्ति लगाने पर निश्चयही नाम–जप होगा । जो ऊँची से ऊँची वस्तु है, जिससे परे कुछ भी नहीं है, वह सब बिना परिश्रमके मिल जायेगी । आप तो शिवभगवानजी, मात्र एक व्रत लेलें। चलते–फिरते, सोते–जागते, उठते–बैठते, खाते–पीते, बस जीभ आपकी मशीनकी तरह नामका उच्चारण करती रहे । फिर अपने आप सब हो जायेगा । सारी बात भगवत्कृपासे हो जायगी । मनका पाप धुल जायेगा । मनकी चंचलता मिट जायेगी । विषयानुराग नष्ट हो जायेगा । श्रीसेठजी {जयदयालजी गोयन्दका} अथवा जिस किसीभी सन्तके प्रति आपकी श्रद्धा–निष्ठा है, उनके प्रति निश्छल, निःस्वार्थ प्रेमभरा आकर्षण उत्पन्न होगा, भगवान् पर संशयहीन विश्वास उत्पन्न होगा । इस प्रकार सबकुछ अपने–आप होकर अत्यन्त दुर्लभ वस्तु, जो भगवत्प्रेम है, वह भी सच्ची इच्छा होने पर मिल जायगा । केवल एक व्रत – निरन्तर जीभसे नाम । जैसे किसी मशीनका स्विच दबा देनेसे वह अविराम चलती रहती है – बड़ी–बड़ी मिलोंमें देखा होगा, वैसे ही जीभको भगवान्के नामकी मशीन बनादें । अच्छी बात जो भी मनमें आये वह कीजिये, परन्तु जीभसे नाम लेते रहिये । इसके बिना साकार अथवा निराकार किसी भी प्रकारके भगवत्तत्त्व पर चित्त जमाकर ध्यान लगाना बड़ा ही कठिन है। होता क्या है कि अधिकांशतः वृत्तियाँ शून्यमें लीन हो जाती हैं और लोग उसे ध्यान मान लेते हैं । मनमें भगवान्का जो भी भाव आपने

निर्धारित किया है वही रखें, परन्तु जिह्वा भगवन्नाम लेती रहे । केवल एक नामकी शर्त्त आप पूरी करदें, शेष सभी बातें भगवत्कृपा पूरी करदेगी ।

श्री शिवभगवानजी, इससे और बड़ी बात अभी इस समय तो मेरे मनमें आपके लिये आ नहीं रही है । फिर भी कोई बात श्रीकृष्ण प्रेरित करेंगे तो आगे पत्रोंमें कहने–लिखने का मन है ।

इधर मेरा स्वास्थ्य भी ठीक नहीं है । अर्ध–रात्रि हो रही है । शरीर कुछ काल विश्राम माँग रहा है ।

{श्रीशिवभगवानजीको मोतीलाल पारीकका जय श्रीराधे}

राधा राधा राधा राधा

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–१५

या तो जगतको सर्वथा भूल जायें या मनके सामने वृन्दावन नाचता रहे

रतनगढ़

ता0 २० मई १९४१

प्रिय श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सप्रेम श्री राधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र मिला । आपने लिखा कि मैं जो मुझे सर्वोत्तम जँचे वह साधना आपको लिखूँ । आप उसी साधनाको जीवनमें अपनाना चाहते हैं । सो, फोगलाजी, हमारे जँचनेकी तो एक ही बात है । चाहे जैसे संभव हो, दो कामोंमें एक काम मृत्युके पूर्व अवश्य ही कर लेना चाहिये। या तो इस संसारको सर्वथा भूल जायें तथा मनके सम्मुख श्रीराधारानी, श्रीवृन्दावन धाम, श्रीगोपीजन निरन्तर नाचते रहें अथवा जहाँ–जहाँ दृष्टि जाय, वहीं–वहीं यह भाव कभी भी नहीं टलने वाला अटल, सुदृढ़ हो जाय कि जो कुछ दीखता–सुनता है, सब कुछ श्रीकृष्ण हैं। सब उन्हींकी लीला है । दोनोंमें से एक हुए बिना मनका राग–द्वेष मिटना अत्यन्त कठिन है और जब तक राग–द्वेषका समूल नाश नहीं होगा, वहाँ तक शान्ति मिलनी कठिन है । इन दोनों स्थितियोंकी प्राप्तिमें अत्यन्त सहायक होता है–निरन्तर भगवान्‌का नाम–जपका अभ्यास ।

नाम–जप पर हमारा रुझान तभी संभव है, जब हमारे जीवनका एकमात्र लक्ष्य भगवान् होंगे । यह बात ठीक–ठीक समझलें कि जबतक अनेक और–और लक्ष्य रहेंगे, तबतक रास्ता कट जाने पर भी वह स्थिति सम्मुख आनेमें बहुत विलम्ब लगेगा । जीवन भर कुछ न कुछ अशान्ति बनी ही रहेगी। यदि आपके एकमात्र लक्ष्य भगवान् होगये और फिर जो–जो भी आपके द्वारा चेष्टाएँ हुईं उनपर यह उद्देश्य रहा कि यह चेष्टा मुझे अपने लक्ष्य भगवान्‌से जोड़ने वाली है अथवा लक्ष्यसे तोड़ने वाली तब फिर रास्ता बड़ी ही शीघ्रतासे कटेगा । उदाहरणके लिये जैसे

या तो जगतको सर्वथा भूल जायें या मनके सामने वृन्दावन नाचता रहे
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

आप कलकत्तेसे बाँकुड़ा गये। वहाँ जाकर दिन–रातमें आपने अनेकों चेष्टाएँ कीं, खाया–पिया, घूमे–सोये, लोगोंसे मिले । अब विचार करके देखें कि आपने जो भी चेष्टाएँ की, उनमें कौन–कौनसी एवं कितनी चेष्टाएँ किस–किस उद्देश्यसे हुईं । आपने रास्तेमें किसी सज्जनसे बात की । अब बात करते समय आपके एकमात्र लक्ष्य यदि श्रीकृष्ण होंगे तो आपके मनकी दशा दोमें से एक प्रकारकी होगी । या तो आपको उक्त सज्जनके रूपमें भगवान् श्रीकृष्णकी अनुभूति होगी और बात करते–करते आप आनन्दमें मुग्ध होते रहेंगे अथवा मन बिल्कुल उपराम रहनेसे उस समय ऊपरी मनसे तो आप बात करेंगे, किन्तु भीतरी मनसे आपका ध्यान श्रीकृष्णके रूपमें, गुणोंमें, लीलाओंमें लगा रहेगा। ऐसा न होकर यदि आपका और कुछ भाव रहता है तो साफ–साफ यह बात आप समझ सकते हैं कि आपका लक्ष्य भगवान् श्रीकृष्ण सर्वथा नहीं हैं।

कलकत्ते–बम्बईमें आप सुन्दर महलनुमा मकान देखते हैं, परन्तु ये दिव्य वृन्दावनसे सुन्दर स्थान कदापि नहीं हैं । दिव्य वृन्दावनके महलोंसे अधिक सुन्दर यहाँका कोई भवन नहीं है । परन्तु जब हमारा मन इन भवनों पर चलता है, तब फिर यह समझ लेना चाहिये कि अभी तो यह दिव्य वृन्दावन देखना ही नहीं चाहता । क्योंकि लक्ष्य दिव्य वृन्दावन अथवा श्रीकृष्ण होजानेपर दिन–रात मस्तिष्क यही सोचता रहेगा कि कैसे रास्ता तय हो और श्रीकृष्णसे हमारा मिलन हो, दिव्य वृन्दावनमें प्रवेश हो । उस समय यहाँका कुछ भी हमें सुहायेगा ही नहीं। हाँ, यदि यह भाव हो कि यहाँ भी सबकुछ श्रीकृष्णकी ही लीला है, तब तो कुछ कहना बनता ही नहीं, परन्तु इसमें भी एक सावधानी तो आवश्यक है ही । बढ़िया–बढ़िया चीजोंको लीला मान लेना तो आसान है, परन्तु परीक्षा तो तब होती है, जब भीषण गरमी पड़ रही हो, पानी मिले नहीं और मन भीतरसे कहे, यह भी श्रीकृष्णकी लीला है। खूब ठंडाई पीनेको मिले, मोटर घूमनेको हो, हाथ जोड़े सेवा करनेवाले खड़े हों, तब श्रीकृष्णकी लीला मानना सरल है । इसलिये आपसे प्रेमवश निवेदन किया है कि कहीं भी जायें, कुछ भी करें, अपना लक्ष्य नहीं भूलें ।

हम किसीके यहाँ जीमने बैठे हैं । यदि श्रीकृष्ण हमारे जीवनके लक्ष्य हैं तो उस समय भी यह ध्यान रहेगा कि हम श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिये खा रहे हैं अथवा भोग–भोगनेके लिये खा रहे हैं ? भोग भोगनेके लिये भोजन करना दूसरी तरहका होता है तथा श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिये भोजन दूसरी तरहका । आप एवं हम खायेंगे वही वस्तुएँ और जितना खाते हैं, उतनी मात्रामें ही खावेंगे, परन्तु श्रीकृष्ण लक्ष्य होने पर हमारा–आपका मन उस समय श्रीकृष्णका ही चिन्तन करता रहेगा । उस समय परोसनेवालेमें भी हमको–आपको

या तो जगतको सर्वथा भूल जायें या मनके सामने वृन्दावन नाचता रहे

पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

श्रीकृष्ण–ही–श्रीकृष्ण दिखाई देंगे । हमारा मन भी प्रत्येक ग्रासके साथ आनन्दसे भरता रहेगा ।

यदि हमारे लक्ष्य श्रीकृष्ण हैं तो फिर हम अपने मनमें संसारके चित्र कदापि नहीं भरेंगे । वे तो पहलेसे ही बहुत अधिक भरे हैं । अब यहाँके इन नाशमान भवनोंको और भरनेसे नया मैल ही तो बढ़ेगा – इस भावसे हम उनकी जगह श्रीकृष्णके उन निकुंजोंको जितना याद कर सकें – करेंगे। जो एकसे–बढ़कर–एक सुन्दर हैं, जिनकी छायाको भी संसारके समस्त बगीचोंकी सुन्दरता छू नहीं सकती, उन निकुंजोंमें ही हम अपना मन फँसायेंगे । उसीमें अपना पूरा लाभ समझेंगे । उस अवस्थामें हमारा मन दूसरोंके गृह–मकान, धन–वैभव देखकर कदापि ईर्ष्यासे जलेगा नहीं, अशान्त नहीं होगा । हम स्वयं शान्ति पायेंगे और दूसरोंको भी जो अपने पास रहनेवाले हैं, शान्ति देंगे। परन्तु हाँ ! यह मन बदमाश है । यह बहुत शीघ्र शुभ बातको पकड़ले, ऐसा होना कठिन है । वह रुके नहीं, तो एक और उपाय है ।

जैसे आप उस महलको देखने गये थे । मुझे पता नहीं आपने वहाँ क्या–क्या देखा ? परन्तु जो–जो चीज आपने देखी, उसी–उसीके आधार पर यदि हम दिव्य वृन्दावनकी कल्पना तुरन्त साथ–ही–साथ करते जाते तो जैसे जहरके साथ अमृत भरा जाय, वैसे ही इन संस्कारोंके साथ एक ऐसी दिव्य वस्तु मस्तिष्कमें घुसती चली जाती कि वह बहुत ही काम देने लायक लाभदायी हो जाती।

आपकी बात नहीं, संभव है आप उस समय भगवान्‌को याद करते रहे हों, परन्तु प्रायः ऐसा ही होता है कि इन वस्तुओंको देखते समय हम भगवान्‌को भूल जाते हैं और केवल माया ही माया पर हमारी दृष्टि लुब्ध रहती है । इसका परिणाम होता है घोर दुःख ।

हमें इस मनसे ही तो लड़ना है । इसीमें हमारी बहादुरी है। इस मनसे कहिये – यार ! अनादि कालसे तेरे कारण ही मैं मेरे प्राण–प्रियतम श्रीकृष्णसे बिछुड़ा हुआ हूँ । पर अब श्रीकृष्णकी कृपासे तुझे मैं श्रीकृष्णके पास ले जाकर निहाल करूँगा । साथ ही स्वयं भी निहाल हो जाऊँगा ।

यह न करके यदि हम मनका कहा करेंगे तो, फिर तो आज यह आपको भवन देखनेके लिये कहेगा, कल बाजार देखनेके लिये और परसों व्यापार–दुकान देखनेकी जिद करेगा । इस पर तो शासन करना ही होगा। चतुराईसे जैसे यह आपको धोखा देता है, वैसी ही चतुराईसे इसे आप भी बाँध लीजिये । जब यह बहुत ही अड़ जाय कि मैं तो अमुक वस्तु देखूँगा ही, तो यदि वह पाप–पूर्ण नहीं हो तो इसे दिखा दीजिये । परन्तु उसके साथ सावधानीपूर्वक श्रीकृष्णको जोड़े

रखिये । जिससे उस जहरका असर नहीं हो।

जीवन तो शिवभगवानजी, अनवरत चेष्टा करते हुए सावधानीपूर्वक बनानेसे बनेगा । शेष भगवत्कृपा ।

{श्रीशिवभगवानजीको मोतीलाल पारीकका जय श्रीराधे}
राधा राधा राधा राधा राधा

पुनश्च – मैने सभी बातें आपको अत्यन्त प्रेमसे कही हैं । इस शरीरको मनसे सर्वथा उतार देनेकी चेष्टा करनी चाहिये । मामूली सर्दी–गर्मी सहन नहीं होगी तो फिर वृन्दावनमें जीवन कैसे बीतेगा ? वहाँ तो खूब मच्छर काटेंगे । पानी गरम–गरम पीनेको मिलेगा । पासमें पैसा यदि नहीं रहा तो भोजनका भी ठिकाना नहीं कि रोज मिले ही । फिर यदि पित्त गरम होनेकी परवाह बनी रही तो व्रजमें वास कैसे कर सकेंगे। इससे मेरा यह अर्थ नहीं समझना चाहिये कि खायें–पीयें नहीं । अच्छी प्रकार भोजन करिये, किन्तु मनसे ये सभी वस्तुएँ उतर जावें । लू चल रही है, अब बार–बार सोचिये– "अरे बापरे ! बहुत लू चल रही है ।" तो अशान्ति बढ जायगी । यह न करके यदि यह सोचा जाय कि क्या ही सुन्दर जीवन है, दो दिनके लिये तो तप करनेको मिला, घरमें इस लूका आनन्द कहाँसे मिलता । बस, चित्तमें आनन्द ही आनन्द भर जायगा।

जीवनकी हर परिस्थिति आनन्दस्वरूप श्रीकृष्णसे भरे रहें, यही सार–की–सार बात है ।

राधा राधा राधा राधा राधा

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–१६

नित्य वस्तुमें मन डुबोइये

रतनगढ़

ता. ५ जून १९४१

प्रिय श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सप्रेम राधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र मिला । आपको मेरे पत्रोंसे बहुत उत्साह होता है और साधनामें रुचि बढ़ती है, सो यह आपका मेरे प्रति प्रेम है । मैं तो आपको खरी–खोटी जो मनमें श्रीकृष्ण प्रेरणा देते हैं, निस्संकोच लिख देता हूँ । अनेक बार बादमें परिताप भी होता है कि भावोंको आदरकी पुट देकर मुझे लिखना चाहिये था । आप अपने प्रेमवश मेरे रूखे पत्रोंसे भी उत्साहित होते हैं, यह आपका सरल स्वभाव है ।

मुझे तो एक ही बात घुमा–फिराकर कहनी है कि जैसे हो, हमारा भजन बढ़ना चाहिये ।

श्रीमद्भागवतमें कहा है – आकाश, वायु, अग्नि, जल, नक्षत्र, सभी प्राणी, सभी दिशायें, सभी वृक्ष, नदियाँ, नद–समुद्र – ये सबके सब, चाहे अचर हों या चर हों – कोई भी भूत हों – सभी श्रीकृष्णके शरीर हैं । यों मानकर अनन्य भावसे सबको प्रणाम करें । अब लू चलरही है, गरमी है, उसमें आग है ही तथा वायु भी है । यदि यह भावना हो जाय कि अग्नि एवं वायु रूपसे मेरे शरीरको श्रीकृष्ण ही छू रहे हैं तो कितना आनन्द हो । नित्यवस्तु तो सभीमें श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्ण भरे हैं। शेष अनुकूलता–प्रतिकूलताके रूपमें जो कुछ बाह्य अनुभवमें आरहा है, वह तो अनित्य, क्षण–क्षण परिवर्तनशील माया ही है ।

अतः मेरी बात मानें तो नित्य वस्तुमें मन डुबोइये । अभी यह नहीं हुआ तो भविष्यमें इतना पश्चात्ताप हो सकता है कि उसकी कोई सीमा ही नहीं । मेरी बात बिलकुल गाँठ बाँधकर रख लें ।

भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, लीला आदिके सिवा यदि मन कुछ भी चिन्तन

करता है, तो समझ लें, घाटेका कोई हिसाब ही नहीं है । अभी पता नहीं लगता। अभी चेष्टा नहीं होती, परन्तु मरनेके समय इन्द्रियाँ इतनी अधिक व्याकुल हो जाती हैं कि बिना अभ्यास भगवान्‌में मन स्थिर होना बहुत ही कठिन होता है । अतः जीवनका शेष सभी समय भगवान्‌में लगाइये । बड़ी तेजीसे रास्ता काटिये। परिवारमें धन–जनमें कहीं मन फँसा रहा और मृत्यु हो गयी तो जीवन बिलकुल व्यर्थ ही हो गया, समझिये ।

शिवभगवान्‌जी ! एक भगवान्‌ही ऐसे हैं जिनको पकड़ लेने पर फिर कभी किसी भी अवस्थामें तनिक भी दुःख नहीं होता । जो जितने अंशमें पकड़ लेता है, उतने अंशमें उसका दुःख कम हो जाता है । पूरा पकड़ लेने पर तो दुःख बिलकुल ही नहीं रह जाता ।

अब आप देखें, लोग बिचारे कितने दुखी रहते हैं । यदि इनमेंसे कोई भगवान्‌को पकड़ ले तो वह कदापि दुखी नहीं होगा । क्योंकि उसके मनमें यह दृढ़ विश्वास रहेगा कि सर्वशक्तिमान् भगवान् मेरे परम सुहृद हैं । वे भगवान् जब मेरे साथ हैं तो फिर मुझे क्या डर है ? आप निश्चय समझिये जो काम हमारे–आपके लिये सर्वथा असंभव है, भगवान् एवं सन्त उसे क्षणभरमें कर सकते हैं । भगवान् एवं सन्तोंके लिये ऐसा कोई काम नहीं है जो असंभव हो, जिसे वे नहीं कर पावें। केवल विश्वास चाहिये ।

एक कथा आती है । महाप्रभु चैतन्यदेव, श्रीवास पंडितके घर कीर्त्तन कर रहे थे । कीर्त्तनके मध्य ही श्रीवासजीका लड़का मर गया। श्रीवासजीको उनके घरके लोगोंने कीर्त्तनके मध्य बुलाकर सूचना दी, परन्तु श्रीवासजीने स्त्रियोंसे कहा –"यदि रोओगी तो महाप्रभुका कीर्त्तन भंग हो जायगा और यदि ऐसा हुआ तो लड़का तो गया ही, मैं भी गंगामें डूबकर प्राण दे दूँगा ।" स्त्रियाँ डर गयीं । अब बेटा तो भीतर मरा पड़ा है और आँगनमें कीर्त्तन करते महाप्रभु नाच रहे हैं।

किन्तु धीरे–धीरे और लोगोंको भी यह बात मालूम होगयी । सबका उत्साह कम होने लगा । धीरे–धीरे एक–एक कर सब नाचना छोड़कर बैठ गये। महाप्रभुको बहुत काल पश्चात् बाह्य ज्ञान हुआ । वे बोले – "क्या बात है ? कोई अनिष्ट घटना घट गयी है ?" लोगोंने सारी बात कह दी । महाप्रभुने लड़केके शवको मँगाया और लगे नाचने । लड़केमें प्राणोंका संचार हो गया ।

श्रीवासने देखा, यह तो उचित नहीं हुआ ! इस लड़केका बड़ा सौभाग्य था कि वैष्णवोंके कीर्त्तनके मध्य उसकी मृत्यु हुई थी । श्रीवासने महाप्रभुसे प्रार्थना की – "महाप्रभु ! ऐसा नहीं करें ।" इसके पश्चात्‌की ठीक घटना मुझे स्मरण नहीं । परन्तु शायद जब घरके सभी लोगोंमें सन्तोष हो गया कि इसको मरनेका ऐसा

सौभाग्य फिर क्या पता मिले या नहीं मिले तो महाप्रभुने कहा –"अच्छा, यही सही।" यह इसलिये हुआ था कि श्रीवासका यह भाव था कि महाप्रभु साक्षात् भगवान् हैं। परन्तु श्रीवासके लिये महाप्रभुने वैसा किया भी नहीं था, किया था उस लड़केकी माताके सन्तोषके लिये । कहनेका इतना ही अर्थ है कि ऐसी कोई घटना नहीं जिसे सन्त अथवा भगवान् नहीं कर सकें ।

जहाँ भगवान्में एवं सन्तमें विश्वास है, वहाँ सब कुछ संभव है। हमारा–आपका भी ऐसा सौभाग्य निश्चय ही है कि हमें उच्चतम कोटिके सन्त मिले हैं । परन्तु हमारा उनपर भगवत्तुल्य विश्वास नहीं है । हम उन्हें मात्र एक अच्छे साधक, महापुरुष ही मानते हैं, अतः हमारे लिये उनके माध्यमसे भगवानकी वैसी अलौकिक कर्तृत्व शक्ति प्रकट नहीं होती। गोपी–प्रेमके एक सर्वोत्तम उपासक बहुत बड़े सन्त नरोत्तमदासजी हो गये हैं । वे जातिके कायस्थ थे । किन्तु ब्राह्मण लोगोंकी भी उन पर बहुत श्रद्धा थी । उनके अनेक ब्राह्मण शिष्य थे । ब्राह्मण समाजमें अनेक टोलियाँ थीं । इनमें से एक ब्राह्मण टोलीने कायस्थ द्वारा ब्राह्मणोंको शिष्य बनाये जानेका बहुत विरोध किया । उन्हें इसका भी बहुत दुःख था कि ब्राह्मणोंने कायस्थको गुरु बनाया ।

आखिर नरोत्तमदासजीकी आयु समाप्त हुई । वे गंगातट पर मरे । मरते समय उनकी बोली बन्द होगयी थी । फिर तो ब्राह्मणोंकी बड़ी भीड़ने मजाक उड़ाना शुरू किया । कोई कुछ कहता, कोई कुछ । किसीने कहा – "बहुत ठीक हुआ, बड़ा भक्त बना फिरता था ।" उनके ब्राह्मण शिष्योंको बड़ा दुःख हुआ । एक शिष्य बहुत ही विश्वासी था । वह भी ब्राह्मण था । उसने मन–ही–मन प्रार्थना की –"गुरुदेव ! एक बार जी उठिये तथा इन सभी ब्राह्मणोंका उद्धार करके जाइये।" उसकी प्रार्थना सच्चे हृदयकी थी ।

नरोत्तमदासजीको एकदम जलाये जानेकी तैयारी होरही थी कि नरोत्तमजी धीरे–धीरे उठ बैठे और हँसने लगे । अब तो ब्राह्मणोंके होश गुम होगये क्योंकि उन्होंने बहुत गालियाँ दी थीं । आखिर एक–एक ब्राह्मणने आकर क्षमा माँगी । सभी उनके शिष्य हो गये । सभीने उनसे श्रीकृष्ण मन्त्रकी दीक्षा ली । इसके पश्चात् सात दिन तक वे जीवित रहे । अन्तिम दिन बोले –"मुझे गंगामें ले चलो।" गंगामें जाकर खड़े हुए शिष्योंसे कहा – मेरा शरीर मलो ।" शिष्योंने शरीर मलना प्रारंभ किया । ऐसा मालूम हुआ, मानो शरीर दूधका पुतला था । वह शरीर पूरा पानीमें घुल गया ।

शिवभगवानजी ! संसारमें चार ऐसी वस्तुएँ हैं जो बिना श्रद्धाके भी फल देती हैं । {१} भगवन्नाम, {२} भगवद्धाम, {३} भगवत्लीला तथा {४} भगवानका अखण्ड

नित्य वस्तुमें मन डुबोइये
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

भजन करनेवाले सन्त । इनमेंसे किसीके भी साथ प्राणोंकी बाजी लगाकर जुड़ जायँ । भगवन्नामसे जुडें तो फिर ऐसा हो जाय कि प्राण छूटें, पर नाम नहीं छूटे । धामसे जुडें तो इस प्रकार कि चाहे बम बरसें, धाममें ही प्राण ब्रजरजमें छोड़ेंगे । वहाँसे बाहर पैर नहीं उठें । लीलासे जुडें तो इस जगतको सर्वथा ही भूल जायें । आँखोंसे हर स्थान पर लीला ही लीला दिखे। सन्तसे जुडें तो ऐसे कि प्राण रहते अलग नहीं हों । मुर्दा शरीर भले ही अलग हो। यदि ऐसा हो तो प्रिया–प्रियतमकी कृपा अवश्य प्रकट होती है।

शिवभगवानजी ! आवश्यकता निष्ठाकी है । हमारी निष्ठा न तो सच्ची है, न ही अखण्ड है । एक क्षण हम जिसे सन्त मानते हैं, दूसरे ही क्षण उसे साधारण व्यक्ति समझने लगते हैं । हमारे पास सन्तको जाँचनेका माध्यम है हमारी बुद्धि, वह हमारी बुद्धि ही जब पूरी मलिन, स्वार्थभरी, अहंकारकी अनुगामिनी है तो हमारी यावज्जीवन सुदृढ़ निष्ठा कैसे रह पावे । एक क्षण हम नाम–जपका विचार करते हैं, दूसरे ही क्षण हम सत्संगको महत्त्व देने लगते हैं । तीसरे ही क्षण हमें वृन्दावन आकर्षित करता है और कुछ ही कालमें हम व्यापारको आवश्यक समझ कलकत्तेकी सैर करने लगते हैं ।

इसी कारण जैसे लुढ़काऊ पत्थर काई नहीं पकड पाता, हमारी निष्ठाकी कमी हमारी उन्नति नहीं होने देती । हमारे चित्तमें भजनके संस्कार जम नहीं पाते। जो स्थिति समझमें आयी वह लिख दी है । आप प्रसन्न होंगे। प्रेमभाव बढ़ाते जायें ।

{श्रीशिवभगवानजी फोगलाको मोतीलाल पारीकके जय श्रीराधे }

राधा राधा राधा राधा राधा

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–१७

भगवान् स्वयं सबकी सँभाल करते हैं

रतनगढ़

२० जून १९४१ ई०

श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सप्रेम राधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र यथा समय मिल गया था। इससे पूर्व उत्तर लिख पाना मेरे लिये असंभव–सा है । अपनी नियमित साधनाके उपरान्त रात्रिमें पत्र लिखना प्रारम्भ करता हूँ । अनेक लोगोंको कभी–कभी पत्र देने होते हैं । अतः इतना शीध्र मुझसे उत्तर पानेकी आशा छोड़ दें । आगे भविष्यमें पत्राचारमें बहुत विलम्ब भी हो सकता है और संभव है, कभी पत्र नहीं लिखनेका भी नियम लेना पड़े। यथा संभव जबतक किसी एकको भी पत्र दूँगा तो आपको प्राथमिकता ही दूँगा । आपके प्रश्नोंके उत्तर निम्न हैं :–

भगवान् सबकी सँभाल करते हैं, फिर जो उनका हो गया है, उस भक्तकी सँभाल करें – इसमें कहना ही क्या है । एक संतकी कथा आपको कहता हूँ। यह सर्वथा सत्य घटना है। वे बदरीधाम जा रहे थे। रास्तेमें टट्टी लगने लगी । चालीस–पचास टट्टियाँ लगीं । अब साथियोंने तो उन्हें छोड़ दिया। वे बेचारे रास्तेसे कुछ हटकर जंगलमें एक गुफामें जाकर पड़ रहे । दूसरे दिन एक बूढ़ा आया एक पुड़िया दवा और दही–भात लेकर । संतने दवा खा ली और दही–भात खा लिया । तीन–चार दिन वह रोज दवा और दही–भात लाता रहा और वे खाते रहे। तीन–चार दिन बाद उनके मनमें कौतूहल हुआ कि यह कौन है, अतः जब वह दही–भात लेकर आया, तब उन्होंने उससे पूछा–"तुम कौन हो!" उसने कहा –"इससे तुम्हें मतलब ? दवा ले लो, दही–भात खा लो ।" संत बोले–"पहले बताओ कि तुम कौन हो।" वह बोला कि –"यह नहीं बताऊँगा।" बाबा बोले–"मैं भी दही–भात नहीं खाऊँगा ।" उसने कहा–"मत खाओ" और यों कहकर वह लौटने लगा पुनः कुछ देर बाद आया और बोला–"खा लो ।" बाबा बोले–"बताओ ।" आखिर वहीं उस बूढ़ेकी जगह भगवान् प्रकट हो गये । संत बोले–"महाराज !

कुछ अनुमान हो गया था कि इस भयानक जंगलमें आपके सिवा और कौन होगा। पर नाथ ! क्या स्वयं आप इस प्रकारकी सेवा भी करते हैं ?" भगवान्‌ने कहा–"जहाँ कोई होता है, वहाँ तो प्रेरणा कर देता हूँ, नहीं होता तो स्वयं आता हूँ ।" यह सच्ची घटना है और कुछ ही समय पहलेकी बात है ।

दक्षिणमें एक भक्त हुए हैं, वे भगवान्‌के बहुत ही विश्वासी थे, गाँवके जमींदार थे । एक साल अकाल पड़ा । कोठेका अनाज तो बाँट ही दिया, अपना मकानतक बेचकर गरीबोंको लुटा दिया । स्त्री–पुरुष पेड़के नीचे रहने लगे । उनका नियम था–एकादशीका उपवास करना फिर द्वादशीके दिन ब्राह्मण–भोजन कराके तब पारण करना । एकादशीके दिन वे पंढरपुर जाया करते थे । इस बार भी गये, दर्शन किया, किन्तु पासमें कुछ नहीं था। कुछ दिन पहले बहुत धनी थे, पर आज फूटी कौड़ी भी पास नहीं थी । लकड़ी बेचनेसे तीन पैसे मिले । एक पैसेकी फूल–माला ली, एक पैसेका प्रसाद चढ़ा दिया तथा एक पैसा दक्षिणामें दे दिया । दूसरे दिन लकड़ी बेचने पर फिर तीन पैसे मिले । उनका आटा ले लिया, पर केवल आटेका निमन्त्रण स्वीकार करनेके लिये कोई ब्राह्मण तैयार नहीं हुआ । दो पहर हो गया । एक–एक करके ब्राह्मण आते, पर खाली आटा देखकर अस्वीकार कर देते । अन्तमें भक्त–दम्पत्ति मनमें सोचने लगे–"प्रभो ! हमारा नियम क्या आज भंग होगा ?" इतनेमें एक ब्राह्मण आया, जो अत्यन्त बूढ़ा था । बोला–"पटेल ! बड़ी भूख लगी है ।" उस बेचारेने लजाकर कहा–महाराज ! मेरे पास तो केवल आटा है ।" ब्राह्मणने कहा–"फिर क्या चाहिये । यहाँसे थोड़े कंडे इकट्ठे कर लें । मैं बाटी बनाकर खा लूँगा ।" यही हुआ, बाटी बनने लगी। इतनेमें एक बुढ़िया आयी । ब्राह्मण बोले–बड़ा अच्छा हुआ, पटेल ! यह मेरी स्त्री है, हम दोनों प्रसाद पा लेंगे ।" पटेल लज्जित हो गये, सोचने लगे–'एक आदमीके लिये भी आटा पर्याप्त नहीं है, दो कैसे जीमेंगे । पर भगवान्‌की लीला थी, बाटी बनायी गयी और ब्राह्मणने कहा– 'एक पत्तल तुम अपने लिये भी ले लो। पटेल बड़े विचारमें पड़ गये । अन्ततोगत्वा बहुत कहने–सुननेके बाद ब्राह्मण–ब्राह्मणी जीमने लगे । कुछ खाकर अन्तर्धान हो गये । पटेल बड़े चकित हुए । प्रसाद पाकर मन्दिरमें दर्शन करने गये । वहाँ भगवान् प्रत्यक्ष चिन्मय रूप धारणकर बात करने लगे । बहुत बातें हुईं। अन्तमें भगवान् बोले–'भाई ! हमें ऐसी ही बाटियाँ खानेमें आनन्द आता है ।' पटेलने पूछा–'महाराज ! तब क्या आप बड़े–बड़े यज्ञोंमें नहीं जाते ?' भगवान्‌ने कहा–'वे लोग हमको खिलाना ही नहीं चाहते ।' पटेलसे भगवान्‌ने फिर कहा–'कल तमाशा देखना, उसी ब्राह्मणके वेषमें मैं कल अमुक जगह जाऊँगा, देखना, मेरी कैसी पूजा वहाँ होती है ।'

भगवान् स्वयं सबकी सँभाल करते हैं
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

एक बहुत बड़े धनीके यहाँ यज्ञ था । हजारों ब्राह्मणोंका निमन्त्रण था। ठीक जीमनेके अवसरपर वे ही बूढ़े बाबा पहुँचे और बोले–'जय हो दाताकी! एक पत्तल हमें भी मिल जाये । बहुत भूखा हूँ ।' लोगोंने पूछा–"आपको निमन्त्रण मिला है ?" ब्राह्मण बोले–'निमन्त्रण तो नहीं मिला, पर हूँ बहुत भूखा, बड़ा पुण्य होगा।' ब्राह्मणकी एक बात भी उन लोगोंने नहीं सुनी । आखिर ब्राह्मण जबर्दस्ती एक पत्तल लेकर बैठ गये । अब तो धनिक बाबूके क्रोधका पार नहीं रहा। उन्होंने हाथ पकड़कर ब्राह्मणको निकलवा दिया । पटेल देख रहे थे । बूढ़े ब्राह्मण पटेलको इशारा करके कह रहे थे–"देखा, हमारा सत्कार कैसा होता है?" फिर कहा–'अब देखो क्या होता है ।' उसी समय बहुत जोरकी आँधी आयी, बड़े–बड़े ओले गिरने लगे। सारा यज्ञ नष्ट हो गया ! एक ब्राह्मण भी भोजन नहीं कर सका । कथा बहुत विस्तारसे एवं बहुत लंबी है । सारांश यह कि किसी भी दुखीको देखकर उसमें विशेष रूपसे भगवान्‌को देखना चाहिये ।

असलमें तो आर्त्तभक्त, अर्थार्थी भक्त भी बनना बड़ा कठिन है । कोई सच्चा आर्त्त, सच्चा अर्थार्थी हो जाय, तब तो फिर क्या पूछना ! उसका दुःख भी मिट जाय एवं भगवान्‌को पाकर वह कृतार्थ भी हो जाय–इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । आर्त्त भक्त हो चाहे अर्थार्थी, उसमें अनन्य निष्ठा होनी ही चाहिये । अनन्य निष्ठाका अर्थ यह कि और सभीपरसे–सभी साधनोंपरसे भरोसा उठाकर मनमें यह निश्चय कर ले कि 'मेरा यह काम तो भगवान् ही पूरा करेंगे ।"मान लें हमें कोई बीमारी है । अब यदि ठीक–ठीक मनमें यह निश्चय हो कि यह बीमारी प्रभुसे ही दूर करवानी है तो निश्चय मानिये प्रभु उसे दूर कर देंगे । पर यदि कोई कहता है कि प्रभु तो दूर करेंगे ही, पर निमित्त तो दवा बनेगी । तो समझ लीजिये कि असलमें उसका विश्वास भगवान्‌पर नहीं है, विश्वास दवापर है । फिर भगवान् भी जब अच्छा करेंगे तब सीधे जादूकी तरह नहीं करेंगे किसी दवासे ही करेंगे । ऐसा न होकर यदि यह धारणा कर लें कि दवासे क्या होगा, प्रभु अच्छा करेंगे, तो सच मानिये बिना दवाके कठिन–से–कठिन रोग–जिसका अच्छा होना असम्भव मान लिया गया है, अच्छा हो सकता है और एक क्षणमें ऐसा हो सकता है मानो, उस बीमारीका कोई चिन्ह भी नहीं रह गया हो–मानो वह बीमारी कभी हुई न थी।

इसी प्रकार अर्थार्थी भक्त भी भगवान्‌की कृपा पाकर एक क्षणमें निहाल हो सकता है तथा एक क्षणमें एक अत्यन्त दरिद्रको भगवान् अरबपति, असंख्यपति बना सकते हैं । कोई कहे कि 'मैं धनके लिये भजन करता हूँ, तो उसे सोचना चाहिये कि मेरी निष्ठा भगवान्‌पर है या नहीं । यदि निष्ठा है तो उसकी यह पहचान है। कोई उसे आकर यह कहे कि "हम गारंटी करते हैं–तुम यह सौदा कर लो, तुम्हें

जरूर लाख रुपये मिल जायेंगे । नहीं मिलें तो हम लाख रुपये तुम्हें अपने पाससे देंगे ।" इसपर भी यदि उसका मन न डिगे तथा वह यह न स्वीकार करके भजन ही करता रहे, तब वह सच्चा अर्थार्थी भक्त है और उसके लिये फिर भगवान् अपना सम्पूर्ण भंडार खोलकर उसे निहाल कर देंगे। आजकल लोग भजन तो करते हैं, दो-चार माला जपते हैं, पर साथ ही सौदे-सट्टेमें भी रूपया लगाते रहते हैं । यह अर्थार्थी भक्तका लक्षण तो है नहीं, इसी कारण आजकल न तो आर्त्त भक्तके लिये जादूका-सा खेल भगवान् करते हैं और न अर्थार्थीको ही जादूकी तरह कोटिपति बनाते हैं ।

शिवभगवानजी ! हम सबको धोखा दे सकते हैं, परन्तु हम सबके अन्तःकरणकी एक-एक स्फुरणाको जानने और पहचानने वाले भगवान्‌को धोखा नहीं दे सकते। भगवान् हमारे भीतरकी सच्चाईको देखते हैं । यदि हमारा उन पर अटूट सच्चा विश्वास है तो भगवान् हमारे लिये सबकुछ करनेमें समर्थ हैं । आवश्यकता है, मात्र सच्चे हृदयके विश्वासकी। सभी इष्ट मित्रोंको यथायोग्य।

{श्रीशिवभगवानजीको मोतीलाल पारीकका जय श्रीराधे}

राधा राधा राधा राधा राधा

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–१८

प्रार्थनासे दोषोंको दूर करें

रतनगढ़

तिथि उल्लेख नहीं है

श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सप्रेम राधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र मिला । आपने अपने मनकी सम्पूर्ण स्थिति निश्छल होकर मेरे सम्मुख रखी । यह आपका मेरे प्रति विश्वास ही है, मैं आपके प्रेमके लिये आभारी हूँ । बिना प्रेमके ये बातें किसीको भी नहीं कही जा सकतीं । आपने लिखा कि मैं अन्य किसीके सम्मुख ये बातें नहीं प्रकट करूँ, सो आपका यह लिखना उचित ही है । मैं अन्य किसीके सम्मुख तो आपकी ये दुर्बलताएँ व्यक्त नहीं ही करूँगा, परन्तु मेरा अपना एक सम्बन्ध भाईजी {श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार} से ऐसा है कि उनसे मैं अपने हृदयकी कोई भी जानकारी कभी भी बतला सकता हूँ । आप जो बातें श्रीभाईजी {श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार} से भी छिपाना चाहें, उन्हें मुझे नहीं ही कहें, यही उचित होगा । यथाशक्ति इन बातोंको तो मैं आपके विश्वासकी रक्षाके लिये उन्हें नहीं कहूँ–ऐसा ध्यान रखूँगा । परन्तु मैं आपसे यही विनीत प्रार्थना करता हूँ कि मैं श्रीभाईजीसे जो भी मेरी जानकारी है उनके द्वारा पूछे जाने पर कभी भी बतला सकता हूँ । या तो मुझे आप श्रीभाईजीको जो कुछ मुझे आप कहते हैं–वह कहनेकी छूट दे दें और यदि यह छूट नहीं दे पावें तो मुझे ऐसी बातें कहें ही नहीं । मैं आपको यह बात स्पष्टतया पूर्वतः ही कह देना उचित समझता हूँ ।

जहाँतक दोषोंको हटानेकी बात है, आप विश्वास पूर्वक भगवान्‌से सच्चे मनसे प्रार्थना कीजिये–'मेरे नाथ ! यदि आप मुझे इसी गिरी अवस्थामें देखना पसंद करते हैं, इस प्रकारसे निरन्तर मेरे मनमें अशान्ति बनी रहने देनेमें ही आपका चित्त प्रसन्न होता है–बार–बार मेरे सामने आप आते हैं और आपका मैं तिरस्कार कर देता हूँ, यदि इसी घृणित अवस्थामें मुझे रखकर आप प्रसन्नताका अनुभव करते हैं तो फिर अपनी इच्छा पूर्ण करते रहो, नाथ ! क्योंकि आप यदि ऐसा चाहते हैं तो इसीमें मेरा परम मंगल है। पर यदि ये सब दोष मेरी कमीके कारण होते हों–मेरी

तत्परताकी कमीके कारण, मेरे अविश्वासके कारण होते हों तो प्रभो ! अब बहुत हो चुका । नाथ! अब कृपा करके इसी क्षण इन्हें मिटा दो । मैं अबोध हूँ, अज्ञानी हूँ,पतित हूँ, मुझे पता नहीं कि मेरे मनमें ये दोष किस कारणसे आते हैं । इनके मिटानेका उपाय तो सुनता हूँ, पर उसका आचरण मुझसे नहीं होता। क्यों नहीं होता, इसका कारण भी मैं नहीं जानता। अतएव हे दयाके सागर ! अब मेरी ओर निहारो और फिर जो उचित हो, करो । शान्ति यदि मेरी कमीके कारण मुझे नहीं मिल रही है तो फिर मेरी कमीको मिटा दो, इसी क्षण मिटा दो और यदि तुम्हारी इच्छासे शान्ति नहीं मिल रही हो, तब तो मुझे कुछ कहना है ही नहीं, यह अशान्ति ही मेरा परम प्रिय धन है–मैं ऐसा अनुभव करने लगूँ, क्योंकि तुम मेरे स्वामी हो, तुम्हारा मुझपर पूर्ण अधिकार है । मैं तुम्हारी वस्तु हूँ, तुम जैसे रखना चाहो, वैसे ही रक्खो ।"

यह है प्रेम मिश्रित भावकी प्रार्थना । यह नहीं हो और शान्ति चाहिये – जैसे भी हो, शान्ति मिलनी चाहिये तो फिर यह कामना सीधे शब्दोंमें करके यही माँगना चाहिये कि "हे नाथ ! मुझे शान्ति चाहिये, शान्ति दो ।" शान्ति पानेके लिये मैं तो सर्वोत्तम उपाय यही जानता हूँ। मैं स्वयं भी यही उपाय करता हूँ । वही मैंने आपको भी बतला दिया ।

यदि आप कहें कि मुझे तो भगवान् पर विश्वास ही नहीं है, मैं कैसे सच्चे मनसे प्रार्थना कर पाऊँगा, तो यह भी उन्हींसे कहिये । उन्हींसे पूछिये–"नाथ! कहाँसे विश्वास लाऊँ ? पैसेसे खरीदनेकी चीज तो यह है नहीं। तुम कह सकते हो, उपाय बतलाता हूँ, उसे करो। पर नाथ ! उपाय, पता नहीं, क्यों मुझसे नहीं होते । सुन लेता हूँ, यत्किंचित् करनेकी भी चेष्टा करता हूँ, पर वे मुझसे हो नहीं पाते, ठीक मौकेपर मैं फेल हो जाता हूँ , अब तुम्ही बताओ, नाथ ! क्या करूँ ? यदि तुम कहो कि काम, क्रोध, लोभको मेरे बलपर डाँटो तो नाथ ! मेरा आपके बलपर यथार्थ विश्वास ही नहीं होता। क्या करूँ ?"

सोचकर देखिये, हृदयकी बात किससे कहें ? कौन ऐसा है, जो सर्व–समर्थ है और हमारी सहायता कर सकता है ? तो यही उत्तर मिलेगा–एकमात्र प्रभु ही ऐसे हैं । उनमें शक्तिकी कमी नहीं । वे हमारे मित्र भी हैं तथा उन्हें हमारी इस घृणित दशाका पूरा–पूरा पता भी है । फिर उनको छोड़कर और किसकी शरणमें जायँ ? सूरदासने गाया है–"तुम तजि और कौन पै जाऊँ ?" काम, क्रोध, लोभसे तंग आकर कहिये–काम, क्रोध, लोभ–ये तीनों, क्या नाथ ! आपसे अधिक शक्तिशाली हैं ? नहीं हैं । आपको यह पता भी है कि इसको ये तंग करते हैं । आप मेरे मित्र भी हैं तथा आपमें इन्हें मार डालनेकी शक्ति भी है–फिर मेरी ऐसी घृणित दशा

प्रार्थनासे दोषोंको दूर करें
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

क्यों है ? मैं नहीं जानता, आप ही जानें । सार बात यह है कि किसी प्रकार भगवान्से जुड़िये, चाहे सकाम भावसे ही सही।

सभी दुःख–मूलक समस्याएँ हमें मात्र इसीलिये घेरे हैं कि हमें न तो भगवान्पर विश्वास है और न ही हम उनसे जुडे हैं । निष्काम–सकाम भावकी बातें ऊँचे भक्तोंके लिये हैं । नरकमें पडे प्राणीको तो पहले नारकीय गतिसे त्राण चाहिये । अतः भगवान्की सत्ता पर, उनके हमारे प्रति असीम सौहार्द पर, उनकी अनन्त शक्ति पर विश्वास करिये और निरन्तर उनकी ओर देखना प्रारंभ करिये ।

श्रीशिवभगवानजी ! आप अपनी दयनीय दशा मुझे इसी प्रेम भरे विश्वाससे कहते हैं कि संभव है मैं आपकी कुछ सहायता कर सकूँ । परन्तु मैं तो आपकी ही तरह निर्बल जीव हूँ । हाँ ! मेरे विश्वासानुसार श्रीभाईजी {हनुमानप्रसादजी पोद्दार} चाहें तो आपकी सम्पूर्ण अशान्ति एक क्षणमें ही मिटा सकते हैं । परन्तु पहले तो आपकी उनपर श्रद्धा हो ही, यह मेरे वशकी बात नहीं । दूसरे वे करना चाहें, नहीं चाहें, इस पर भी मेरा वश नहीं । परन्तु यह तो परम सत्य है कि श्रीभाईजी {हनुमानप्रसादजी पोद्दार} भगवानकी ही शक्तिके अंशको पाकर सिद्ध–सन्त हैं । अतः हम भगवान्के रहते, भगवान्के दानसे दानी बने, किसी भी व्यक्तिसे चाहे वह सिद्ध सन्त ही हो क्यों आशा करें। संत भगवान्के यंत्र होते हैं । उनका स्वतन्त्र मन नहीं होता । वे भगवान्के मनसे ही मनवाले होते हैं । भगवान्को कृपा करनी होती है, तो सन्त भी पिघलते हैं अन्यथा सन्त भी अनसुनी कर देते हैं, बेरुखी दिखा देते हैं । अतः आप तो भगवान्का ही कसकर पल्ला पकडिये । यही एकमात्र उपाय है।

और क्या कहूँ । आपकी सभी बातोंको भगवान्को समर्पित करके उनकी हृदयमें जैसी प्रेरणा हुई, उसके अनुसार उत्तर दे दिया है। मेरी तो आपसे एक ही प्रार्थना है कि प्रेम बनाये रखें ।

राधा राधा राधा राधा राधा

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–१९

प्रेम–प्राप्तिके लिये परमावश्यक सात साधनायें

१५ जुलाई १९४१ ई०

श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सप्रेम श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र मिला । आपने लिखा कि मैं भगवान श्रीकृष्णकी महिमा पर कुछ कहूँ । उनकी महिमा सुननेसे आपका मन उन पर विश्वास करने लगे–यह आपकी बात मुझे समुचित लगी। आप गीताप्रेससे निकले भक्त–चरित्र पढ़िये । इन भक्त चरित्रोंमें आपको पर्याप्त भगवान्की महिमा मिलेगी ।

वैसे पद्मपुराण पातालखण्ड का एक प्रसंग मैं उल्लेख कर दे रहा हूँ–

"एक बार भगवान् शंकरजीसे भगवती पार्वतीजीने पूछा – "प्रभो! मुझे भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा बताइये ।" भगवान् शंकरजीने कहा – "देवी ! जिनके चरण–नखकी महिमाका वर्णन भी असम्भव है, उसकी स्वयंकी महिमा मैं क्या और कैसे बताऊँ ?" फिर कुछ सोचकर बोले–"अच्छा सुनो !"

प्रत्येक ब्रह्माण्डमें एक ब्रह्मा, एक विष्णु और एक मैं–शंकर रहते हैं। हम तीनोंके तीनों उन श्रीकृष्णकी कलाके करोड़वें अंशसे उत्पन्न होते हैं । इतने तो वे प्रभावशाली हैं । प्रत्येक ब्रह्माण्डमें एक कामदेव रहता है । वह इतना सुन्दर है कि समस्त ब्रह्माण्डको मोहित किये रहता है। पर उसमें जो सुन्दरता है, वह श्रीकृष्णकी सुन्दरताका करोड़वाँ–करोड़वाँ अंश है । वे इतने सुन्दर हैं । उनके शरीरसे इतना तेज, इतनी चमक निकलती है कि प्रत्येक ब्रह्माण्डमें जितने सूर्य हैं, सब–के–सब उस चमकके करोड़वें अंशसे प्रकाशित होते हैं । उनमें श्रीकृष्ण अंग–प्रभाके करोड़वें अंशसे प्रकाश आता है । जगत्में जितनी मनको मोहने वाली सुगन्धियाँ हैं, सुगन्धित फूल हैं, सबमें श्रीकृष्णके अंग–गन्धके करोड़वें अंशसे गन्ध आती है और बहुत–सी बातें बतायी हैं–वे सब कविकी कल्पना नहीं, ध्रुव सत्य हैं

तथा सचमुच ही किसीको श्रीकृष्णके ऐश्वर्य–सौन्दर्य–माधुर्यपर विश्वास हो जाय तो फिर उसको जीवनमें केवल श्रीकृष्णकी ही चाह रहेगी, बाकी चाहें सब मिट जायेंगी।"

शिवभगवानजी ! आप निम्न सात बातोंके लिये प्राणोंकी बाजी लगाकर चेष्टा कीजिये ।

प्रेम उत्पन्न होनेके पहिले ये सात बातें अवश्य हो जाती हैं, तब प्रेम प्रकट होता है । नहीं तो, आप हों या कोई हो, रास्ता तय करना बड़ा कठिन है ।

प्रेम न बाड़ी नीपजै प्रेम न हाट बिकाय ।
राजा परजा जेहि रुचै सीस देइ लै जाय ।।

यह बिल्कुल सत्य है । बहुत बात कर लेंगे, लीला भी सुन लेंगे, लाभ भी थोड़ा होगा ही, पर इन सात बातोंके आये बिना वास्तविक प्रेम प्रकट ही नहीं होता । यह ठीक है कि पूर्णरूपसे ये सात बातें तो तभी होती हैं, जब भगवान्‌का **साक्षात्कार हो जाता है, पर उसके पहले** साधकको चाहिये कि वह इनको अपने अंदर **पूरी–पूरी उतारनेके लिये सम्पूर्ण** प्रयत्न करे । वे बातें ये हैं –

(१) अखण्ड शान्ति बनाये रखना–इसके लिये शास्त्रमें दृष्टान्त आता है कि **राजा परीक्षित् बिना अन्न–जलके सात** दिन कथा सुनते रहे, पर उनमें शान्ति इतनी थी कि अन्न–जल उन्हें याद ही नहीं आता था ।

(२) भगवान्‌के भजनके सिवा और किसी काममें समय बिल्कुल नहीं लगाना।

(३) संसारके समस्त भोगोंसे ऐसा वैराग्य हो जाय कि ये विष्ठासे दीखने लग जायें । जिस प्रकार विष्ठाको देखकर घृणा होने लगती है, मुँह–नाक बंद करके हम चलते हैं कि कहीं दुर्गन्ध न आ जाय, ठीक उसी प्रकार समस्त भोगोंसे आन्तरिक घृणा हो जाय ।

(४) मनमें अपने अंदर मानका बिल्कुल भाव ही न रहे । शास्त्रोंमें दृष्टान्त आता है कि राजा भरत जब प्रेमके लिये व्याकुल हुए तब वे इतने अधिक मानशून्य हो गये थे कि राज्य करते समय जिन–जिन राजाओं पर विजय प्राप्त की थी, जिन–जिनसे उनकी शत्रुता थी, उन्हींके घरमें जाते थे और उनकी दी हुई रोटीके टुकड़े माँग–माँगकर पेट भरते हुए भजन करते थे–और अपने शत्रुको ही नहीं, चाण्डालतकको प्रणाम करते थे ।

(५) दिन–रात मनमें यह विश्वास, यह भरोसा बढ़ता रहे कि मुझे श्रीकृष्ण अवश्य–अवश्य मिलेंगे । यह विश्वास मनसे एक क्षणके लिये भी दूर न हो ।

(६) निरन्तर नामका गान अतिशय प्रेमसे हो, भाररूपसे नहीं–मालाकी संख्या पूरी करनेके लिये नहीं, बल्कि नाम इतना प्यारा लगे कि प्राण भले छूट

जायें, पर नाम नहीं छूटे ।

(७) जहाँ–जहाँ भगवान्‌की लीलाएँ हुई हैं, उन–उन स्थानों के प्रति अतिशय प्रेम हो ।

ये सात बातें तो धारण करनेकी हैं और चार बातें विघ्नरूप हैं, जिनसे बचनेकी चेष्टा प्राणोंकी बाजी लगाकर करनी चाहिये । ये चार बातें ही प्रेमकी प्राप्तिमें बाधक होती हैं । जहाँ ये छूटीं कि बस, प्रेमका रास्ता बड़ी शीघ्रतासे तय होने लगता है । इनको शास्त्रमें 'अनर्थ' कहते हैं, जो असलमें भगवान्‌से हटाते रहते हैं । वे चार ये हैं –

(१) दुष्कृतजात अनर्थ – अर्थात् पूर्वजीवनमें तथा इस जीवनमें जो–जो बुरे कर्म किये हैं, उनके संस्कार मनपर जमा रहते है और वे बार–बार बुरे कर्मोंकी स्फुरणा कराकर साधकको बुराईकी ओर घसीट ले जाते हैं। अतः पहले जो हो चुके उनके लिये तो क्या किया जाय, पर अब यह पूरा ध्यान रखना चाहिये कि बुरे कर्म हमारे द्वारा भूलसे भी, कभी भी न हों। झूठ–कपट आदि सभी बुरे कर्मोंके मार्गसे हम बहुत दूर हट जायें ।

(२) सुकृतजात अनर्थ – आपने जो पूर्वजीवनमें एवं इस जीवनमें पुण्य किये हैं, उनके फल आकर बाधा डालते हैं–जैसे पुण्यके फलसे आपको धन–मान प्राप्त हो गया है, जो आपके मार्गमें बाधा दे रहा है । इससे बचनेका उपाय यह है कि सच्चे मनसे भगवान्‌को अपने सब पुण्य समर्पण कर दिये जायँ तथा भीतरी हृदयसे उनका फल नहीं चाहा जाय ।

(३) अपराधजात अनर्थ – दस प्रकारके नामापराध एवं चौसठ प्रकारके सेवापराधोंसे, जहाँतक हो बचना चाहिये । ये इतने भयानक दोष हैं कि बहुत ऊँचे उठे हुए साधकोंको भी नीचे गिरा देते हैं । इनसे बचनेका उपाय है–सच्चे मनसे भगवान्‌से प्रार्थना करना कि 'हे नाथ ! मुझे अपराधोंसे बचाओ' तथा जान–बूझकर कभी अपराध न करनेकी पूरी चेष्टा करना । अबतक बहुत अपराध हो चुके हैं और अब भी होते हैं, इसीलिये रास्ता रुक रहा है ।

(४) भक्तिजात अनर्थ – यह विघ्न आपको कम सतायेगा । यह हमारे–जैसे सन्यासी तथा साधकोंको बहुत तंग करता है । यह है भक्ति करके उसके द्वारा सम्मान–बड़ाई, पूजा–प्रतिष्ठा चाहना । इससे भी मार्ग रुक जाता है।

इन चारों अनर्थोंसे बचते हुए उपर्युक्त सातों बातोंको धारण करनेकी चेष्टा करें । खुशामदकी बात दूसरी है, पर सच बात तो यह है कि रास्ता तय करना हो तो फिर ये काम अवश्य कीजिये । मेरा तो कुछ नहीं बिगड़ेगा, मैं आपसे जो बातें कहूँगा, उनसे मेरा तो लाभ ही होगा । पर आपका रास्ता मेरी समझसे तो

तभी तय होगा, जब आप कमर कसकर चलनेकेलिये तैयार हो जायेंगे।

धन, स्त्री, शरीरका अभिमान रत्ती–रत्ती चूर हुए बिना रास्ता नहीं कटेगा। खूब तेजीसे चलिये, नहीं तो मर जाइयेगा । मरते समय चित्तकी वृत्ति जहाँ रहेगी, वहीं आप चले जायँगे । मकान, रूपया, धन, परिवार, मान–बड़ाई, सब–के–सब या तो आपको पहले ही छोड़ देंगे या आप इनको छोड़कर चले जायँगे । विष्ठा–मूत्रसे भरा हुआ यह शरीर मिट्टीमें मिल जायगा । इसे जानवर खा जायँगे तो यह विष्ठा बन जायगा । जलाया जायगा तो इसकी राख हो जायगी और गाड़ दिया गया तो सड़कर कीड़ोंके रूपमें परिणत हो जायगा । इसके आरामकी तथा विलासकी चिन्ता छोड़िये।

ये बातें केवल सुननेकी नहीं हैं, करनेसे होगा, बड़ी तत्परतासे करनेपर होगा । नहीं तो सुनते रहिये–न शान्ति मिलेगी, न दुःख मिटेगा । प्रेम तो कहाँसे मिलेगा !

आप नित्य ये सब बात सुनते हैं, फिर भी आपकी रूपये एवं परिवारकी ममता तथा अभिमान नहीं मिटते । इसका अर्थ यह है कि अभी आप रास्तेपर चलनेकेलिये तैयार नहीं हैं । यदि प्रत्येक बार आप मनको दण्ड देने लगें तो फिर यह मन सीधा हो जाय ।

असल बात है–सच्ची तीव्र–से–तीव्र लालसाका होना । यह हुई कि उसी क्षण सारा नक्शा पलट जायगा । अभी चाह है, पर मन्द–से–मन्द है। जितनी परवाह संसारकी वस्तुओंके लिये है, भगवान्‌के लिये उतनी भी नहीं है। आप कुछ भी करें–देखें, श्रीकृष्णसे छिपा तो कुछ है नहीं, वे सर्वान्तर्यामी हैं, सर्वसमर्थ हैं और उनमें अपार करुणा भी है । फिर आप उनके सामने रोते क्यों नहीं, रोना क्यों नहीं आता ?....का लड़का बीमार था । मनमें कितनी व्याकुलता थी, रात–दिन मस्तिष्कमें एक ही बात थी । 'हे राम ! लड़का ठीक हो जाय ।' रोना सीखना नहीं पड़ता था । अपने–आप रोना आता था। जिस दिन जीवन श्रीकृष्ण–प्रेमके बिना सूना दीखेगा, उनका वियोग असह्य हो जायगा, उस दिन रोना स्वयं अपने–आप आने लग जायगा। वैसी लालसा ही नहीं है । इसीलिये न तो रोना आता है और न उतनी परवाह ही होती है । बिल्कुल ठीक मानिये–घर, धन, परिवार, पुत्र–सभी फिर, इतने फीके लगने लगेंगे कि मानो इनसे कैसे हमारा पिण्ड छूट जाय । पर अभी तो आप स्वयं इच्छा करके मन चलाकर इनको पकड़ते हैं । इसका अर्थ यही है कि आपको उनकी लालसा नहीं है, और जब लालसा ही नहीं है, तब फिर कहाँसे लायें ! मोल तो वह मिलती नहीं । इसके ळिये संतलोग अपने अनुभवसे यह कहते हैं कि 'मलिन अन्तःकरणमें यह लालसा उत्पन्न ही नहीं होती।'

हमारा अन्तःकरण मलिन है, इसीलिये यह लालसा उत्पन्न नहीं हो रही है । जिस क्षण यह लालसा उत्पन्न हुई कि उसी क्षण भगवान् में भी लालसा उत्पन्न हो जायगी । अतः अन्तःकरणको निर्मल बनानेकी चेष्टा ही कर्तव्य होता है, पर हमारा अन्तःकरण निर्मल हो, यह लालसा भी तीव्र नहीं है, क्योंकि उसके जो उपाय हैं, उनका आचरण जब हमसे नहीं होता, तब कैसे कहा जाय कि हम चाहते हैं कि हमारा अन्तःकरण निर्मल हो। फिर भी संतलोग तथा शास्त्र कहते हैं कि 'घबराओ मत । यदि एक बार भी भगवान्की ओर झूठी–मूठी प्रवृत्ति भी तुम्हारी हो गयी है तो फिर तुम भले ही भगवान्को छोड़ दो, भगवान् तुम्हारा पिण्ड नहीं छोड़ेंगे ।'

शिवभगवानजी ! यह नितान्त सत्य है कि अब भगवान् आपका कल्याण तो करेंगे ही, परन्तु यदि आप अच्छे बच्चेकी तरह शास्त्र और सन्तोंका कहना मानते हुए शुभ आचरण एवं भजन करेंगे तो आपकी राह सुखपूर्वक कटेगी, अन्यथा भगवान् आपको सुधारनेकेलिये दुःख रूपी दण्ड– बिधान कर देंगे, अशान्तिकी चाबुक लगायेंगे । तब आपको रोते हुए, बिलख–बिलख कर सीधे रास्ते आना ही पड़ेगा । अन्य तो आपकी गति हो ही नहीं सकती । यह निश्चय ही सत्य मान लीजिये ।

राधा राधा राधा राधा

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–२०

मात्र भगवान्‌का एक नाम लेनेसे ही जीव तर जाता है

रतनगढ़

ता. ३ अगस्त १९४१ ई.

प्रिय श्रीशिवभगवानजी फ्रोगला !

सादर सस्नेह राधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र मिला । मैने पूरे मनोयोगसे उसे दो–तीन बार पढ़ा है।

आपको विश्वास करा देना तो कठिन है, पर एक बिल्कुल सच्ची बात आपको बतला रहा हूँ । बहुत ही मर्मकी बात है कि कैसे एक नाम लेनेसे ही मनुष्य तर जाता है । भगवान्‌में नाम–नामी, देह–देहीका भेद नहीं है । जो इस बातको मान लेता है, उसको समझानेका तरीका तो दूसरा है, पर जो यह नहीं मानता, उसके लिये दूसरा तरीका है । अवश्य ही उसे शास्त्र एवं भगवद्वचनोंपर कुछ–न–कुछ विश्वास तो होना ही चाहिये । नहीं तो, फिर नास्तिकको समझाना तो बड़ा ही कठिन है । भगवान् कहते हैं –

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।'

अब इसके अनेक अर्थ होते हैं । एक यह अर्थ भी निकाला जा सकता है कि 'जो मेरा नाम निरन्तर लेगा, उसका नाम मैं निरन्तर लूँगा ।' अच्छी बात है–नाथ ! मुझसे निरन्तर नाम नहीं लिया जाता, मैंने जीवन भरमें एक बार आपका नाम लिया हैं तो एक बार बदलेमें आपने भी मेरा नाम लिया होगा। अब यदि यह प्रश्न होता है कि तुमने मनसे नहीं लिया था, वाणीसे यों ही निकल गया था, तो ठीक है, आपने भी बदलेमें एक बार वाणीसे ही मेरा नाम लिया होगा, पर नाथ! आपमें मेरी तरह वाणी और मनका भेद तो है नहीं । (भगवान् की वाणी और मन एक हैं) आप मेरे नाम लेनेके बदलेमें केवल वाणीसे भी मेरा नाम लेते हैं, तो मेरा निश्चय ही उद्धार हो गया ।

अब असल बात भी यही है । जिस क्षण हमारे मुखसे एक नाम निकलता

है, उसी क्षण भगवान्‌की सारी कृपा हम पर प्रकट होनेके लिये विधान बन जाता है, परंतु वह कृपा जब तक प्रकट नहीं होती, तभी तक इधर–उधर भटकना जारी रहता है । यदि किसी प्रकार भगवान् या किसी सच्चे संतके प्रति सच्चे हृदयसे अत्यन्त कातर प्रार्थना हो जाय तो उसी क्षण इस बातपर उसे विश्वास हो जाता है और उसकी सारी अशान्ति मिट जाती है, परंतु यह प्रार्थना होती नहीं । हो तो, देखियेगा–सचमुच भगवान् इतने करुणामय हैं, उनका हृदय इतनी जल्दी पिघल जाता है कि जगत्‌में उसकी तुलना ही असम्भव है । जो चाहियेगा, जैसे चाहियेगा वही उसी प्रकार वे कर सकते हैं । यह नियम केवल लौकिक बातोंमें ही नहीं, परमार्थमें भी यही नियम है । मान लें, कि आप प्रार्थना करें कि 'हे भगवान् ! मुझे धन दो, मान दो ।' इस प्रार्थनाको वे जैसे जल्दी–से–जल्दी सुन सकते हैं, पूरी कर सकते हैं, वैसे ही उतनी ही जल्दीसे जल्दी 'हे भगवान् ! मेरा आपमें दृढ़ विश्वास हो जाय, आपमें मेरा प्रेम हो जाय' इस प्रार्थनाको भी सुन सकते हैं, पूरी कर सकते हैं । पर धनके माँगनेके समय तो आपका हृदय ठीक–ठीक उस धनको भीतरी हृदयसे माँगता है, और विश्वास, प्रेम माँगते समय ऊपरी मनसे मात्र–नियम पूरा करता है । पूजापर बैठकर यह भी एक नियम है–कर लेते हैं, पर सचमुच वह व्याकुलता नहीं होती ।......... के लड़केकी बीमारीको लेकर जैसी व्याकुलता थी, क्या उन लोगोंमें कोई भी उतना ही व्याकुल होकर यह चाहते हैं कि 'हमारा मन भगवान्‌में लगे, भगवान्‌पर हमारा विश्वास हो ।' विश्वासकी अपेक्षा भी हृदयकी व्याकुलताकी अधिक आवश्यकता है; क्योंकि व्याकुलता विश्वास करा देगी । अब उस लड़केकी बीमारीमें जो आदमी जो उपाय बतलाता था, वही वे करते थे । विचार भी नहीं रहा था कि यह ठीक कहता है या झूठ । ऐसा इसीलिये था कि व्याकुलता थी । उसी प्रकार जिस दिन आप सच्चे मनसे चाहने लगेंगे, व्याकुल हो जायँगे कि हमारी साधनाकी वैसी स्थिति एक घंटे ही रहकर क्यों छूट जाती है, क्यों नहीं निरन्तर बनी रहती है, उसी दिन, उसी क्षण भगवान् सुन लेंगे । अभी आपको यह सहन हो रहा है कि स्मरण छूट गया तो क्या हुआ । दिनभर मौजसे रहे, भोजन किया, साँझको यहाँ आ गये, बातें कर रहे हैं । पर जब व्याकुलता होगी तब पागलकी–सी अवस्था होकर स्मरणकी स्थिति छूटते ही उसी क्षण, वहींपर लाज–शरम छोड़कर आप रोने लगियेगा और जबतक वह पुनः स्थिति नहीं हो जायगी, तबतक आपका रोना बंद नहीं होगा।

जो हो, ऐसी सच्ची व्याकुलताका उपाय यही है जो आप कर रहे हैं । निरन्तर अपनी जानमें यही चेष्टा रखें कि नाम–लीला–गुण–रूप सुनें, पढ़ें, कहें, स्मरण रखें । करते–करते जैसे–जैसे अन्तःकरण पवित्र होगा, वैसे–वैसे, व्याकुलता

उत्पन्न होनेकी, सच्ची लालसा उत्पन्न होनेकी भूमि तैयार होती जायगी । जिस दिन पूर्ण–रूपसे वह भूमि तैयार हो गयी कि कोई सच्चा संत या स्वयं भगवान् उसमें प्रेमके बीज बो देंगे । फिर वह उगेगा, बढ़ेगा, फूलेगा, फलेगा और निरन्तर फूलता–फलता ही रहेगा, उसका कभी फूलना–फलना बंद नहीं होगा ।

श्रीशिवभगवानजी, प्रभु जो प्रेरणा देते हैं, वह निष्कपट भावसे आपके प्रेम–वश आपके सम्मुख निवेदित करदेता हूँ । आपको मेरी बातें लाभकी, दामी समझमें आवें तो स्वीकार कर लें, अन्यथा मेरे पत्र रद्दीकी टोकरीमें डाल दें ।

राधा राधा राधा राधा

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–२१

असली सन्तोंकी पहचान

रतनगढ़

ता० १२/८/१९४१

प्रिय श्रीशिवभगवानजी !

सादर सस्नेह श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ! देखिये ! भगवान्‌का कहीं अभाव नहीं है। जिस कलमसे आप मुझे पत्र लिखते हैं, उस कलममें भी पूर्ण भगवान् हैं । और जहाँ भगवान हैं, वहीं उनकी आजतक जितनी लीला हुई है, हो रही है, एवं होगी, सबकी सब नित्य मौजूद हैं ।

आप जिस लीलाको देखना चाहें, जिस रूपको देखना चाहें, उसी रूपमें, उस लीलाके साथ इसी कलमसे भगवान् प्रकट हो सकते हैं । यह बात नहीं है कि भगवान्‌के यहाँ भूतकाल, वर्तमानकाल, भविष्यकाल हो । वहाँ तो सब वर्तमानकाल ही है । अर्थात् जैसे पाँच हजार वर्ष पहले वृन्दावनमें लीला हुई थी तो इसका यह मतलब नहीं कि वह लीला तो भूतकालकी है । इसका अर्थ यह है कि आजसे पाँच हजार वर्ष पहले वृन्दावनकी लीलावाली फिल्म लोगोंके सामने आयी थी । वह फिल्म तो आज भी ज्यों–की–त्यों है, केवल छिप गयी है । सिनेमा देखते हैं, वह आरम्भसे लेकर अन्ततकका खेल सजाया हुआ होता है । उसी प्रकार भगवान्‌के विराट् दिव्य शरीरमें अनादिकालसे लेकर अनन्तकाल तक होने वाली सभी लीलाएँ सजायी हुई हैं । अर्जुनने चाहा विश्वरूप देखना, उसके सामने उसके अधिकार भरका आया ।

चाह सच्ची होनी चाहिये। फिर तो पहले–से–पहले भगवान् मामूली–से–मामूली बात भी करके रख देते हैं । मनमें विचार तो पीछे आयेगा, पर भगवान् जानते हैं कि यह उस दिन उस समय यह चीज चाहेगा तथा पहलेसे ही उसकी पूरी व्यवस्था करके रख देते हैं । एक मामूली–सी बात बतला रहा हूँ–मैं. . . . . था, दिनमें किसी कारणसे भोजन कम किया था, इसीलिये जोरसे भूख लग रही थी । मनमें बार–बार भूखका ख्याल आता था। मनमें आया कहीं–से कोई वृन्दावनका प्रसाद लाकर देता तो थोड़ा खा लेता–खानेकी तीव्र इच्छा थी । वहाँसे सत्संगमें आया । आते ही एक आदमीने वृन्दावनका प्रसाद देना आरम्भ किया । मैं तो चकित रह गया ! क्योंकि मेरे पेटकी बात किसीको मालूम थी ही नहीं । सुना कि मोहनलालजी वृन्दावनसे आये है और प्रसाद ले

आये हैं ।

आपने ब्रजभावकी बात पूछी सो पहले तो ब्रजभावके अधिकारी ही बहुत बिरले होते हैं, फिर व्रजके मधुर भावके वास्तविक अधिकारी तो बहुत कम ही होते हैं । जिसके लिये गीता कही गयी, जिस गीताके जोड़का ग्रन्थ मिलना कठिन है, उसी अर्जुनने एक बार भगवान् श्रीकृष्णसे प्रार्थना की–'प्रभो! आप गोपसुन्दरियोंके साथ होनेवाली अपनी लीलाकी बात हमें बतायें ।' भगवान् नट गये और बोले–उसे सुनकर तुम्हें देखनेकी इच्छा हो जायगी, इसीलिये इस बातको जाने दो।' अर्जुन व्याकुल होकर चरणोंमें गिर पड़े । इसपर श्रीकृष्णने कहा–'उसके लिये तो साधना करनी पड़ेगी । तुम्हें त्रिपुरसुन्दरीकी उपासना करनी पड़ेगी । वे यदि प्रसन्न होकर तुम्हें दिखाना चाहेंगी, तभी देख सकते हो। दूसरा उपाय नहीं ।' कथा पद्मपुराणमें विस्तारसे है– अर्जुन गये हैं वहाँ देवीने स्पष्ट कहा है कि 'अर्जुन ! जो भक्त श्रीकृष्णको प्राणके समान प्यारे हैं, उनमें भी सबको इस लीलाके दर्शन नहीं होते । कोई–कोई विरले ऐसे भक्त होते हैं, जिन पर श्रीकृष्ण यह कृपा कर देते हैं । तुम धन्य हो, जो तुम पर उन्होंने कृपाकी है और उस लीलाके दर्शनके लिये तुम्हें मेरे पास भेजा है ।' इसके बाद अर्जुनने बड़ी–बड़ी साधना, जैसे देवीने बतायी, की है, और फिर जब वे गोपी बन गये हैं, तब श्रीराधाजी आकर उन्हें श्रीकृष्णके उस परम दिव्यधाममें जिसके परे और कुछ भी नहीं है, ले गयी हैं और वहाँका आनन्द पाकर अर्जुन कृतार्थ हुए हैं। जो अर्जुन दिन–रात भगवान्के साथ खाते–पीते, बैठते थे, जिन्हें गीताका ज्ञान हो गया था, उनकी यह हालत है । हमारे–जैसे तुच्छ पामर प्राणी तो इस लीलाके कहनेके भी अधिकारी नहीं हैं ।

एक रत्नावती देवी थी । यह आमेर (जयपुर) की रानी थी, उसको मारनेके लिये सिंह छोड़ा गया । सिंह महलमें गया, वह ध्यानस्थ बैठी थी । सिंह पहुँचा । वह बोली–'आइये, प्रह्लादके भगवान् ! बड़ी कृपा की।' थाल लिया, प्रसाद सजाया, आरती सजायी । सिंह चुपचाप पूजा ग्रहण करता रहा। धूप, दीप, नैवेद्यसे पूजा करके एवं विधिपूर्वक आरती उतारकर रत्नावतीने प्रणाम किया। फिर सिंह वहाँसे उछला तथा पिंजरेमें घुसनेसे पहले दो–तीन पहरेदारोंको खा गया । सिंह तो एक ही था, पर उसने रत्नावतीकी पूजा स्वीकार की और पहरेदारोंको मार डाला । ऐसा क्यों ? ऐसा इसलिये कि रत्नावतीका तो सच्चा भगवान्का भाव था और पहरेदार सिंहको सिंह मान रहे थे।

ऐसे ही प्रत्येक चोर, बदमाश, डाकू भी भगवान् बन सकता है । लाला बलदेवसिंह नामके एक सज्जन देहरादूनमें थे । उनको मरे कई वर्ष हो

गये। भगवान्के बड़े भक्त थे, असली भक्त थे । बहुत रुपयेवाले थे । एक दिन डाकुओंने नोटिस दी कि 'आज रात्रिको हम लोग लूटने आयेंगे । आप तैयार हो जाइये ।' यही नोटिस उनके भतीजेको भी मिला । भतीजे तो पुलिस सुपरिटेंडेंटके पास गये तथा बलदेवसिंहने रसोइयोंको कहा कि 'खूब बढ़िया–बढ़िया माल बनाओ । आज भगवान्के पधारनेकी बात है ।' भतीजेसाहब आये । बोले–'चाचाजी! क्या इन्तजाम किया ?' बलदेवसिंहजीने कहा–'खूब बढ़िया–बढ़िया रसोई बनवा रहे हैं उनके स्वागतके लिये ।' भतीजेसाहब तो पागल समझकर चले गये । उनके घरपर पुलिसका पहरा बैठा और बलदेवसिंह सचमुच बहुत बढ़िया–बढ़िया बहुतसे आदमियोंके खानेभरकी बहुतसी रसोई बनवाकर रातभर प्रतीक्षा करते रहे कि अब आयें, तब आयें । स्वयं भी नहीं खाया । आखिर कुछ हुआ नहीं, पर यदि होता भी तो उनके घर तो डाकू नहीं आते, भगवान् ही आते।

भगवत्प्राप्ति बहुल ऊँचे दर्जेकी चीज है । बाघ, सिंह, हिरन, बकरीको साथ बैठा देनेसे यह नहीं माना जा सकता कि ऐसा कर देनेवाले भगवान्को प्राप्त हुए पुरुष हैं, क्योंकि ये बातें तो बहुत ही तुच्छ एवं नीचे दर्जेकी ही हैं । सर्कसवाले भी पशुओंको शिक्षण देकर वशमें कर लेते हैं। भगवत्प्राप्ति असलमें क्या चीज है, इसे भगवत्प्राप्त पुरुष ही जानते हैं । संसारी मनुष्य तो देखता है कि किसमें क्या चमत्कार है, पर चमत्कार होना भगवत्प्राप्तिका लक्षण नहीं है। दक्षिणमें एक संत हुए थे ज्ञानदेवजी । उन्हींके समय एक योगी थे चाँगदेव। वे सिंहपर सवारी करते थे । १४०० वर्षकी उनकी आयु थी । प्रत्येक १०० वर्ष पर जब मृत्युका समय आता, तब योगबलसे समाधिमें बैठ जाते और फिर १०० वर्षके लिये नया जीवन बना लेते । इतनी शक्ति थी ! ज्ञानदेवजी तीन भाई थे तथा एक उनके बहन थी, सभी भगवत्प्राप्त पुरुष थे । चाँगदेवके पास उनकी खबर पहुँची, बहुत लोग उनकी प्रशंसा करते । चाँगदेवजीको अभिमान था । सिंह पर चढ़कर मिलने चले । लोग तो बाहरको देखते हैं । बाप रे! कितना बड़ा महात्मा है कि सिंह पर सवारी करता है । लोगोंने कहा– 'ज्ञानदेवजी महाराज ! एक बहुत बड़े महात्मा आपसे मिलने आ रहे हैं, आप चलिये ।' ज्ञानदेवजीके मनमें आया कि 'अच्छा, देखें ।' उस समय तीनों भाई–बहन एक टूटी हुई दीवालपर बैठे थे, भगवत्–चर्चा हो रही थी । जब लोगोंने बहुत कहा–'महाराज ! बहुत भारी महात्मा आ रहे हैं, अगवानीके लिये चले चलिये ।' तब ज्ञानदेवजीने कहा–'ठीक है ।' फिर दीवालसे बोले––'री दीवाल ! तू चल।' कहनेकी देर थी कि वह दीवाल जमीनसे उखड़कर चल पड़ी। चाँगदेवने देखा––बाप रे ! आजतक योगके द्वारा मैं चेतन प्राणीको ही वशमें करके इच्छानुसार नचा सकता था, पर यह तो जड़पर शासन

करता है । उसी क्षण अभिमान टूट गया और चरणोंमें जा गिरे । उसी समय ६४ (अभंग) छन्दोंमें उन्हें ज्ञानदेवजीने उपदेश दिया तथा रामनामकी महिमा बतायी कि भगवान्‌के नामके सामने ये सभी बातें तुच्छ हैं । फिर उनकी छोटी बहिनने उन्हें दीक्षा दी, तब उन्हें भगवान्‌की प्राप्ति हुई ।

असली संतोंकी पहचान किसी बाहरी चेष्टासे नहीं हो सकती । एक साँईबाबा थे । उनको लोग रजाई ओढ़ा देते । साथमें कुत्ता आता, वे रजाईसे खिसकते–खिसकते बाहर हो जाते । अब इस चेष्टासे ही किसीको भगवत्प्राप्त मान लेना नहीं बनता । साँईबाबाकी बात नहीं है । उनके विषयमें तो एक विश्वस्त सूत्रसे मैंने सुना है कि वे भगवत्प्राप्त पुरुष थे । यद्यपि मैं निश्चयपूर्वक कुछ नहीं जानता । पर ऐसी चेष्टा देखकर किसीको भगवत्प्राप्त मान लेना भूल है । संतका असली स्वरूप इससे अत्यन्त विलक्षण है । वृन्दावनमें ग्वारियाबाबा थे, कुछ ही वर्ष पहले शरीर छूटा है, उनका विचित्र ढंग था । वे अपनेको श्यामसुन्दरका सखा मानते थे और सचमुच थे भी । उनकी विचित्र–विचित्र बातें आती हैं । दिनभर, पता नहीं कहाँ–कहाँ घूमते रहते थे । एक दिन रास्तेमें पड़े थे । रात्रिका समय था। कई चोर उस रास्तेमें जा रहे थे । चोरोंने पूछा कौन हो ? वे बोले–'तुम कौन हो ? उन सबने कहा–'हम तो चोर हैं ।' इन्होंने कहा–'हम भी चोर हैं ।' उन्होंने कहा–'चलो, तब चोरी करें ।' इन्होंने कहा–'चलो ।' सब एक व्रजवासीके घरमें चोरी करने घुसे । वे सब तो चोर थे ही, उन सबने सामान बाँधना आरम्भ कियां । ये कुछ देर तो खड़े रहे। फिर वहीं एक ढोलक पड़ी थी । उसे लगे जोरसे ढम–ढमा–ढम बजाने। घरके आदमी जाग गये । वे सब तो भागे, पर ये ढोलक बजाते रहे। घरवालोंने आकर चार–पाँच डंडे बाबाको लगाये । अन्धकार था । रोशनी जलायी तो देखा कि ग्वारियाबाबा हैं । उन सबको बड़ा दुःख हुआ कि महात्माको डंडे मार दिये । पूछा–'बाबा ! तुम कैसे आये ?' बोले–'चोरी करबे ताँई आये ।' उन सबने पूछा–'और कौन–कौन हते ?' बोले–श्यामसुन्दरके सखा सब हते ।' अब देखिये, इन लोगोंकी कैसी चेष्टाएँ होती हैं ।

ग्वारियाबाबा मरनेके कुछ दिन पहले बोले–'अब नोटिस आय गयी है, अब नहीं रहूँगो ।' मरनेके दो दिन बाद वहाँसे कुछ दूर एक भक्त था, उसके यहाँ गये और दूध पीया । बाबाका एक भक्त था , बड़ा बीमार था । रोने लगा कि 'बाबा, या तो अच्छा कर दो या अब पासमें बुला लो ।' स्वप्नमें आये मरनेके दूसरे दिनकी यह बात है । उससे कहा–'रोते क्यों हो ? चल, हमारा उत्सव मनाया जा रहा है; देखो ।' फिर स्वप्नमें ही उसे ले गये । जो–जो था, दिखलाया । फिर

कहा–'अमुक दिन तुम्हें ले जायँगे ।' नींद खुलनेपर उसने जाँच की । ठीक–ठीक जैसे उत्सव हुआ था, वैसे ही उसने स्वप्नमें देखा था और फिर उसी बतायी हुई तिथिको मर गया ।

उनकी ऐसी–ऐसी विलक्षण बातें हैं कि सबका समझना कठिन हो जाता है। पर वे थे सचमुच श्यामसुन्दरके सखा । सच्चे महात्मा थे । उनकी कई चेष्टाओंका कुछ भी अर्थ नहीं लगता था । दो महीने मरनेके पहले हाथोंमें हथकड़ी डालकर घूमते रहते थें कि श्यामसुन्दरने कैद कर दिया है । बड़े भारी संगीतज्ञ थे । कहनेका सारांश यह है कि बाहरी चेष्टा भगवत्प्राप्तिका प्रमाण नहीं बन सकती । बहुत ऊँची चेष्टा करनेवालेमें भी त्रुटि रह सकती है तथा कोई बावला–सा नगण्य व्यक्ति भी बहुत बड़ा महात्मा हो सकता है ।

व्रजके प्रेमी संतोंका जीवन सुननेपर तो ऐसा मालूम होगा कि कोई रोते हैं, कोई हँसते हैं, कोई पागल हैं । कितनोंमें बाहरसे कुछ भी प्रेमके लक्षण नहीं दीखते, पर उनके भीतर श्रीकृष्ण–प्रेमका अनन्त सागर लहराता रहता है । इन प्रेमी संतोंकी पहचान बाहरसे हो ही नहीं सकती ।

व्रजजीवन कुछ इतना पवित्रतम जीवन है कि उसका कण ही यदि किसीको कल्पनामें आ जाय तो फिर सांसारिक भोगोंकी तो बात ही क्या, ऊँची–से–ऊँची मर्यादाकी पारमार्थिक स्थितियोंसे भी वह सर्वथा उपरत हो जाता है । परंतु यह करनेसे नहीं होता, यह तो भजनके फलस्वरूप– भगवत्कृपाके प्रभावसे किसी भाग्यवान् साधकमें प्रकट होता है । निरन्तर गुण–लीलाका श्रवण करते–करते, नाम लेते–लेते उस कृपाका प्रकाश होकर किसी–किसी भाग्यवान्के अनर्थकी जब पूर्णतया निवृत्ति हो जाती है, तब व्रजप्रेमकी साधना वस्तुतः आरम्भ होती है । उसके पहलेकी साधना तो जबरदस्ती होती है, रुचिपूर्वक नहीं; पर जबर्दस्ती करना भी बड़ा उत्तम है । किसी तरह भी चलनेवालेका रास्ता तो कटता ही है ।

श्रीकृष्ण इतने सुन्दर हैं कि कहीं एक बार वे कृपा करके स्वप्नमें भी किसीको एक अपनी हल्की–सी झाँकी दिखा दें तो अनन्त जन्मोंकी आसक्ति उसी क्षण मिटकर वह उस रूपके पीछे पागल हो जाय; पर वे किसीके वशमें तो हैं नहीं। शास्त्रमें एक श्लोक है, जिसमें यह कहा गया है कि श्रीकृष्ण कितने स्वतन्त्र हैं । कालियनागके फणपर तो नाचते हैं और उनके चरणोंके दर्शनके लिये बड़े–बड़े योगी बेचारे अनन्त जन्मोंसे बाट देखते हैं, पर वे सामने नहीं आते। वे श्रीकृष्ण बड़े ही मौजी हैं । एक अनुभवी भक्त कहते हैं–

गोपालांगणकर्दमेषु विहरन् विप्राध्वरे लज्जसे
ब्रूषे गोकुलहुंकृतैः स्तुतिशतैर्मौनंविधत्से सताम् ।
दास्यं गोकुलपुंश्चलीषु कुरुषे स्वाम्यं न दान्तात्मसु
ज्ञातं कृष्ण तवांघ्रिपंकजयुगं प्रेमैकलभ्यं मुहुः ।

'श्रीकृष्ण ! तुम ग्वालोंके आँगनकी कीचड़में लोटते हो, पर विप्रवरोंके यज्ञोंमें जाते हुए लजाते हो; गौ–बछड़ोंके हुंकारका उत्तर देते हो, पर सत्पुरुषोंकी सैकड़ों स्तुतियाँ सुनकर भी मौन धारण किये रहते हो, गोकुलकी पुंश्चलियोंकी दासता करते हो, पर जितेन्द्रिय पुरुषोंके चाहनेपर भी उनके स्वामी नहीं बनते। इससे यह पता लग गया कि तुम्हारे चरण–पंकज–युगल केवल प्रेमसे ही प्राप्त हो सकते हैं।' तात्पर्य यह है कि परम–असीम सुन्दर होकर भी वे परम स्वतन्त्र हैं । उनकी हल्की–सी झाँकी भी स्वप्नमें वही कर सकता है, जिसे वे कराना चाहें । खेलना उनका स्वभाव है । उनका खेल भी विचित्र है । राजाको रंक, रंकको राजा; पापीको संत, संतको पापी; श्मशानको महल, महलको श्मशान– ऐसी ही विचित्र लीला वे करते हैं । किस क्षण, किसके जीवनमें क्या होगा, यह किसको पता ? पर भक्तको डरनेकी आवश्यकता नहीं है । उसे तो उनकी ओर आशा लगाकर भजन करते रहना चाहिये । एक श्लोक है–

प्रतिज्ञा तव गोविन्द न मे भक्तः प्रणश्यति ।
इति संस्मृत्य संस्मृत्य प्राणान् संधारयाम्यहम् ।।

'गोविन्द ! आपकी यह प्रतिज्ञा है कि मेरे भक्तका पतन नहीं होगा । मैं इसी बातको याद कर–करके प्राणोंको धारण कर रहा हूँ ।'

यहीं श्रीकृष्ण हैं । अणु–अणुमें श्रीकृष्ण हैं और जहाँ है, अपनी सम्पूर्ण शक्ति, समग्र ऐश्वर्यको लेकर ही वर्तमान हैं । अब यदि हमारा इस बातपर विश्वास हो जाय तो हम दूसरेका मुँह फिर क्यों ताकें । किसीकी भी सहायताकी आवश्यकता नहीं । आजतक जितने भी संत हुए हैं, हैं और होंगे–सब उनके अंदर हैं, सब उन श्रीकृष्णके अंदर ही हैं जो अणु–अणुमें स्थित हैं । यहाँ तक कि हम जिस मनसे सोचते हैं, उस हमारे मनमें ही वे स्थित हैं। पर हमारा विश्वास नहीं, तब क्या हो ? यह घड़ी है, इसी घड़ीके अणु–अणुमें श्रीकृष्ण हैं । श्रीकृष्ण ही घड़ी बने हुए हैं । यदि विश्वास हो, ठीक–ठीक संशयहीन विश्वास हो तो यहीं इस घड़ीमें ही वे प्रकट हो जायँ और आपसे बातें करने लग जायँ । समस्त वृदावनकी लीला आप यहीं इस घड़ीके स्थानपर ही देख सकते हैं । प्रह्लादका निश्चय था–खंभेमें भगवान् हैं, खंभा–जैसे जड़ पदार्थमें भी वह ठीक–ठीक भगवान्को देखता था । इसलिये भगवान् वहीं प्रकट हो गये, नृसिंह–रूपमें इसलिये कि उन्हें

असली सन्तोंकी पहचान
पत्र-प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

हिरण्यकशिपुको मारना था । पर कोई चाहे कि श्रीकृष्णरूपमें ही प्रकट हों तो श्रीकृष्णरूपसे खंभेमें प्रकट होंगे और पूछेंगे– 'प्यारे ! बोलो क्या चाहते हो ?' आप खूब मजेमें कह सकते हैं ––'हमें व्रजकी लीलाके दर्शन कराइये ।' और उसी क्षण वे चाहें तो दिखा सकते हैं । अर्जुनने प्रार्थना की–'नाथ ! मैं आपका विश्वरूप देखना चाहता हूँ,' 'तो ठीक है, देखो ।' वहीं रथपर सारथीके रूपमें जो श्रीकृष्ण थे, उन्हींके शरीरमें विश्वरूप दीखने लग गया, सारथी ही बदल गया । यदि अर्जुनके मनमें प्रेममयी लीला देखनेकी इच्छा होती तो भगवान् उन्हें वहीं उसी क्षण प्रेममयी लीला भी दिखा सकते थे । यह ठीक है कि बहुत भारी कड़ी साधनासे प्रेममयी लीलाके दर्शन होते हैं, पर साधनाका बन्धन साधकके लिये है, न कि श्रीकृष्णके लिये । वे चाहें तो बिना किसी भी साधनाके उसी क्षण लीला दिखा दें। साधना श्रीकृष्ण ही करवाते हैं; पर यह बन्धन नहीं कि साधना होगी, तभी दर्शन होगा ! वे जो चाहें, वही नियम बन सकता है।

बस, विश्वास होना चाहिये–यहाँ श्रीकृष्ण हैं । बस, इतना ही । फिर हाथ जोड़कर कभी बात करें, कभी प्रार्थना करें, कभी रोयें, कभी खीझें। उनसे कहें–क्यों प्रभो ! केवल गीतामें कहते ही हो कि वैसी बात भी है ? तुमने ही तो कहा है कि मेरे लिये सब समान हैं, तो मैं भी तुम्हारे लिये सबके समान ही हूँ; फिर मुझे क्यों नहीं स्वीकार करते ? यदि कहा कि तुम चाहते नहीं तो तुम्हीं बताओ मैं क्यों नहीं चाहता ? मेरे अंदर चाह उत्पन्न करो । नाथ ! यह तो जानते ही हो, तुमसे छिपा नहीं है कि मैं सुख चाहता हूँ, दुःख कदापि नहीं चाहता, भीतरी मनसे सुख चाहता हूँ । यदि तुम कहो कि फिर मुझे भजो, मुझमें ही सुख है और कहीं भी सुख नहीं है तो बताओ, मेरे मनमें तुम्हारी इस बातपर विश्वास क्यों नहीं होता? क्यों मैं विषयोंका भजन करता हूँ ? तुम्हीं आकर एक बार बता जाओ–बस, एक बार ही सामने आकर बता जाओ, फिर चले जाना । तुम कहोगे कि मैं तो उसके सामने आता हूँ जो मेरे लिये अत्यन्त व्याकुल होता है तो फिर मेरे अंदर वही व्याकुलता उत्पन्न कर दो । यदि कहो कि तुम यह भी नहीं चाहते कि मेरे अंदर व्याकुलता उत्पन्न हो तो तुम्हीं बताओ, मैं ऐसा क्यों नहीं चाहता ? इस प्रकार बातें कीजिये । पर यह तभी होगा, जब आपका यह विश्वास हो कि श्रीकृष्ण यहाँ हैं, अवश्य हैं । विश्वासके लिये भी उपाय है–बार–बार कहें कि 'मेरे नाथ ! मुझे क्यों विश्वास नहीं होता कि तुम यहाँ हो, तुम्हीं बताओ। मैं कहाँसे विश्वास लाऊँ ? मैं दुःख चाहता नहीं; सुख चाहता हूँ–इसमें तनिक भी झूठ नहीं । तुम भी कहते हो– सुख मिलेगा 'मुझपर विश्वास करनेसे; तो फिर तुमपर मेरा विश्वास क्यों नहीं होता ? क्या मैं तुम्हारे लिये दूसरा हूँ ?'

असली सन्तोंकी पहचान

पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

ऊँचे प्रेमका एक उदाहरण है–पतिव्रता स्त्री । पति परदेशमें है । अब मन नहीं लगता, तो वह मन नहीं लगनेपर एकान्तमें बैठकर रोने लग जायगी; पर उसके मनमें यह नहीं आ सकता कि 'चलें, बाहर घूम–फिरकर मन लगायें।' इसी प्रकार भक्तका मन न लगनेपर वह एकान्तमें बैठकर भगवान्को याद करके रोने लगता है, रोकर ही मन शान्त करता है; उसके मनमें यह नहीं आता कि चलो, चार दोस्तोंमें बैठकर जगत्की–विषयोंकी चर्चा करके मन बहला लें । यहाँका पति अल्पज्ञ है, पर श्रीकृष्ण सर्वज्ञ हैं और जहाँ भक्त रो रहा है, वहीं वे अणु–अणुमें छिपे हुए हैं । उसका रोना उनमें करुणाका संचार कर देता है और उनको यह व्यवस्था करनी पड़ती है कि जबतक मैं नहीं मिलता, तबतक इसका मन थोड़ा–बहुत लगा रहे । जैसे स्त्रीको पतिका संदेश सुननेपर बड़ी शान्ति मिलती है, वैसे ही भक्तको भगवद्गुणानुवाद तथा आश्वासनकी बातें अर्थात् 'वे मिलेंगे, निश्चय मिलेंगे,' सुनकर शान्ति मिलती है । इसीलिये ऐसे भक्तके लिये भगवान् संतपुरुषोंका संग देते हैं । संत दूत हैं, वहाँ उनसे मिलकर सारी बातें लाते हैं और भक्तको सन्तोष कराते हैं ।

परन्तु हमारी तो दशा बहुत ही निम्न कोटिकी है । हमें तो साक्षात् सन्तों पर भी विश्वास नहीं है । हम अनेकों बार सुन चुके हैं कि सेठजी (जयदयालजी गोयन्दका) भगवत्प्राप्त सन्त हैं । श्रीभाईजी (हनुमानप्रसादजी पोद्दार) को भी भगवान्के दर्शन अनेकों बार हुए हैं । हमारा इतना सौभाग्य है कि उनके परमोच्च पारमार्थिक अनुभवोंकी बात हम उनके मुख से भी सुन चुके हैं फिर भी हमारा उन पर विश्वास नहीं है । हम इन्हें छोड़कर व्यापार और विषयभोगोंके लिये कलकत्ते–बम्बई भागते हैं । यदि हमें इतना ही विश्वास हो जाय कि ये सन्त भगवान्के दूत हैं, भगवान्का कार्य करने विश्वमें आये हैं और भगवान्से इनका नित्य–संपर्क है, तब भी हमारा जीवन पवित्र हो जाय और हम कल्याण पथके राही हो जावें ।

परन्तु हमारा तो उद्देश्य ही अभी भगवान् नहीं हैं । हमारा उद्देश्य धन, सम्मान और संसार है । फिर केवल बातें करनेसे बातें ही होती है, हमारे भीतरका भरा संसार हमारी प्रगति भगवान्की ओर होने नहीं देता । क्या कहूँ। सभी इष्ट मित्रोंको यथायोग्य ।

राधा राधा

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–२२

मनसे, वचनसे एवं दृष्टिसे जो कुछ ग्रहण होता है – सब भगवान् हैं

स्थान एवं तिथि
कुछ भी उल्लेख नहीं

श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सप्रेम राधाकृष्णौ वन्दे ! आपका पत्र यथा समय मिल गया था। आपने लिखा कि बहुत मना करने पर भी आपकी दृष्टि सुन्दर स्त्रीकी ओर चली ही जाती है । भोले–भोले सुन्दर बच्चे भी आपको मोहाकृष्ट कर ही लेते हैं । सो यह आपका मेरे प्रति प्रेम एवं विश्वास है, साथ ही आप पर भगवान्‌की महती कृपा है कि आपको अपने दोष, दोषरूपमें दीख रहे हैं । यह दशा आपकी ही नहीं, सभीकी है, परन्तु दूसरे लोग इसे दोष ही नहीं समझते । जो भगवत्कृपावश इसे दोष मानते हैं, वे भी उन्हें अपने भीतर छुपाकर ऊपरसे उजले साफ–सुथरे बने रहना चाहते हैं ।

आप विचार कर देखिये–जितने भी सुन्दर शरीर हैं, चाहे वे स्त्रीको पुरुषके अनुभवमें आवें अथवा पुरुषको स्त्रियोंके सुन्दर दीखें, सभीमें मात्र हाड़, मांस, मल मूत्र, गंदी–से–गंदी चीजें भरी हैं । फिर भी भ्रम हो जाता है और आँखें बरबस चली जाती हैं तथा मन भी यह कहता है कि देखो, कैसे सुन्दर हैं ? अब सोचिये कि यह भ्रम क्यों होता है ? इनमें आंशिकरूपसे श्रीकृष्ण मौजूद हैं और वे हैं, इसलिये यह भ्रम हो जाता है कि सुन्दर हैं। फिर भला, स्वयं श्रीकृष्ण जिस समय नटवरनागर मुरलीधरके रूपमें किसीके सामने आ जाते होंगे; उसकी क्या दशा होती होगी । जिनकी एक चमक मात्रसे ऐसा भ्रम हो जाता है कि हाड़, मांस, मल, मूत्रका थैला इतना सुन्दर प्रतीत होने लगता है, फिर जब वे ही स्वयं निज रूपसे जिस समय दर्शन देते होंगे, उस समयकी दशा कितनी विचित्र होती होगी ।

सचमुच ही यह जो कुछ है–सभी श्रीकृष्ण हैं । एक श्लोक भगवान्‌ने भागवत्‌में कहा है–इतना साफ कि क्या बताऊँ । पर हमारा विश्वास नहीं है,

इसीलिये हम दुखी हैं । कहते हैं—'मनसे, वचनसे, दृष्टिसे तथा और सभी इन्द्रियोंसे जो भी ग्रहण होता है; वह मैं हूँ—इस बातको जान लो।' अब विश्वास हो तो अपने पुत्र या स्त्रीको तो आँखसे आप देखते ही हैं और आँखसे देखी हुई चीज श्रीकृष्ण कहते हैं 'मैं हूँ ।' फिर उनके व्यवहारसे दुःख क्यों होगा ?

श्रीकृष्णका स्पष्ट ध्यान नहीं होता हो, श्रीकृष्णकी सेवाके उपकरणोंका ही ध्यान कीजिये । भावना कीजिये—भगवान्को धूप दे रहे हैं; धूपकी कटोरीका ध्यान करते अथवा धूपके धूएँका ध्यान करते हुए ही मर गये तो आपको निश्चय-निश्चय भगवत्प्राप्ति हो जायगी । व्रजके पेड़का ध्यान करते हुए ही मरे, पर आपको प्राप्ति होगी श्रीकृष्णकी ही; क्योंकि वहाँका पेड़ श्रीकृष्ण ही है। वह पेड़ यहाँकी तरह जड़ नहीं । मान लें, कोई ध्यान करता है—वनसे श्रीकृष्ण लौट रहे हैं, संगमरमरकी सड़क है, आगे-पीछे गाय हैं । सड़कके दोनों किनारे बड़े-बड़े आलीशान महल हैं, महलके नीचे फुटपाथ है, उसपर हरे-हरे वृक्ष लगे हैं । अब यदि श्रीकृष्णके रूपका ध्यान न होकर फुटपाथ, सड़क, वृक्ष आदि—इनमेंसे किसी भी वस्तुका ही ध्यान क्यों न हो, पर मन फँस गया तो यहीं जीवित अवस्थामें ही उसे श्रीकृष्णके दर्शन हो जायँगे । साधना पूरी होनेके पहले ही मरना पड़े तो मरते समय चाहे किसी भी वस्तुका ध्यान क्यों न हो, यदि वह श्रीकृष्णके वृन्दावन-भावसे भावित वस्तु है, चाहे पेड़-पौधा ही क्यों न हो, तो उसे निश्चय ही श्रीकृष्णकी प्राप्ति ही होगी । इसका कारण यह है कि वृन्दावनमें पेड़, सड़क, डंडा, पत्ता, मकान, खंभा—जो कुछ भी है, वह सर्वथा सच्चिदानन्दमय श्रीकृष्णरूप ही है । इसलिये लीलाके ध्यानमें बहुत आसानी है।

चाहे ध्यान न लगे, पर अपनी जानमें जो कुछ समय निकालकर सच्चे हृदयसे पूरी चेष्टा करता है कि मेरा मन भगवान्में लग जाय, उसका ध्यान न होनेपर भी भगवान् उसे अपना भक्त मान लेते हैं । ध्यान न लगे, उतनी देर जीभसे नाम-जप तो हो ही सकता है । चेष्टा हुई या नहीं—इसकी यही पहचान है कि आप जैसे दो घंटे रोज बैठें और उतनी देर यह खयाल आयेगा कि 'अरे, मन तो भाग गया ।' बस, यह खयाल आते ही यदि आपने उतनी बार सच्चाईके साथ उसे जोड़नेकी चेष्टा की, तब तो समझना चाहिये कि पूरी चेष्टा हुई । यह न होकर जब ध्यान करने बैठे और दूसरी व्यापार-सम्बन्धी बातोंमें मन भाग गया तथा फिर जब याद आया तो याद आनेपर भी उन्हीं बातोंको सोचने लग गये और यह कहने लगे कि 'क्या करें, जब ध्यान नही होता, तब व्यापारकी ही बात सोच लें'—ऐसा करना ही 'पूरी चेष्टा नहीं करना' है । मान लें दो घंटेमें ५०० बार मन भागे पर ५०० बार ही जब-जब याद आयी, तब-तब पूरी तत्परतासे उसे

मनसे, वचनसे एवं दृष्टिसे जो कुछ ग्रहण होता है—सब भगवान् हैं

पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

भगवान्‌में जोड़ देनेकी क्रिया करके यह निश्चय करना कि अब नहीं भागने दूँगा—यही पूरी चेष्टा है ।

भागवतमें महापुरुषकी उच्च स्थिति के लक्षण बतलाते हुए यह कहा गया है कि जिसे सचमुच ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है, उसे यह ध्यान भी नहीं रहता कि मेरा शरीर बैठा है कि खा रहा है कि टट्टी–पेशाब कर रहा है । उसे अपने शरीरका बिल्कुल ही ज्ञान नहीं रहता । जैसे शराब पीकर मनुष्य पागल हो जाय और फिर उसके ऊपर वस्त्र है या नहीं—इस बातका उसे ज्ञान नहीं होता, वैसे ही ब्रह्मप्राप्त पुरुषको अपने शरीरका ज्ञान नहीं होता कि यह छूट गया है कि है। वह तो सदाके लिये आत्मानन्दमें डूब जाता है। शरीर लोगोंकी दृष्टिमें प्रारब्ध रहनेतक काम करता है, फिर वह भी प्रारब्ध समाप्त होते ही गिर पड़ता है । ये स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके वाक्य हैं । अब आप सोचें—यदि कोई सचमुच ब्रह्मप्राप्त पुरुष आपको मिला है तो उसमें यदि वह सच्चा प्राप्त पुरुष है, तो ये लक्षण घटेंगे ही; पर यदि दीखता है कि वह महापुरुष पेशाब करता है, भोजन करता है, सबसे बातचीत करता है, व्यवहारमें सलाह देता है और कहीं भी पागलपन नहीं दीखता तो फिर दोमें एक बात होनी चाहिये—या तो वह प्राप्त पुरुष नहीं है, साधक है, या वह इतने ऊँचे स्तर पर पहुँचा हुआ पुरुष है कि उसके प्रारब्धको निमित्त बनाकर उसके अन्तःकरणमें स्वयं भगवान् ही उसकी जगह काम करते हुए जगत्‌में अपनी भक्ति, अपने तत्त्वज्ञानका प्रचार कर रहे हैं। इन दो बातोंके अतिरिक्त तीसरी बात मेरी समझमें नहीं आती । या तो उसमें कमी है या वह इतना ऊँचा है कि स्वयं भगवान् उसके शरीररूप खोलीके अन्दरसे काम कर रहे हैं।

देखिये, आपने भगवान्‌को देखा है ? नहीं देखा है। पर फिर उन्हें मानते क्यों हैं ? इसीलिये मानते हैं कि संतोंने उन्हें देखा है और शास्त्र कहते हैं कि 'भगवान् हैं' अतः उसी शास्त्रकी यह बात है कि संत–असली संतका स्वरूप ऐसा होता है । विश्वास होना तो कठिन है; क्योंकि अन्तःकरण सांसारिक वासनाओंसे इतना भरा होता है कि सत्यका प्रकाश उसमें छिपा रहता है । पर सच मानिये—जिस दिन आपका अन्तःकरण तैयार हो जायगा अर्थात् संसारसे बिल्कुल उपरत हो जायगा, उस दिन संतमें ही नहीं, आपकी जहाँ दृष्टि जायगी वहीं एक भगवान्–ही–भगवान् दीखेंगे । पर अभी तो जो आपको दीखता है, उसीको लेकर आपके प्रश्न पर विचार करना है । अस्तु ! आपको जहाँ संत दीखते हैं, केवल वहाँ ही नहीं, जहाँ यह घड़ी दीखती है, वहाँ भी श्रीभगवान् हैं और पूर्णरूपसे हैं। आपमें, मुझमें, इनमें और सब वस्तुओंमें हैं । आपमें, इनमें, हममें प्रकट नहीं हैं—यहाँ छिपे हुए हैं । ये ही भगवान् जहाँ आपको संतका शरीररूप खोली दीखती

है—वहाँ प्रकट रहते हैं । अवश्य ही इस बातको समझ लेना थोड़ा कठिन है; क्योंकि वास्तवमें इस बातको बतानेके लिये कोई दृष्टान्त नहीं है । पर ऐसे समझनेकी चेष्टा करें कि जिस दिन श्रद्धा हो जायगी, उस दिन तो यह घड़ी ही भगवान् बन जायगी । दीवाल, खंभे—सब भगवान् बन जायँगे और प्रह्लादकी तरह फिर सबमें भगवान्के ही दर्शन होंगे। यह तो श्रद्धाकी बात है; क्योंकि इन चीजोंमें भगवान् प्रकट नहीं है । पर जहाँ प्रकट हैं, वहाँ श्रद्धाकी आवश्यकता नहीं होती । वहाँ जरूरत होती है केवल देखनेकी, सम्पर्कमें आनेकी । घड़ी देखनेसे अपनेको भगवान्की अनुभूति नहीं हो सकती, न घड़ी आपका कल्याण ही कर सकती है । पर संतको देखनेमात्रसे ही, सम्पर्कमें आनेमात्रसे ही, आपको भगवान्की अनुभूति होनी प्रारम्भ हो जायगी और संतका दर्शन आपका कल्याण कर देगा; क्योंकि वहाँ भगवान् प्रकट हैं।

जैसे आग इस कलममें भी है, इस चौकीमें भी है और हमारे शरीरमें भी है; पर फिर भी संध्या होते ही हमें ठंड लगेगी ही । पर यहीं पर यदि इस कलम, इस चौकीको घिसनेसे आग प्रकट हो जाय तो फिर तो श्रद्धाकी आवश्यकता नहीं होगी कि हमारी ठंड दूर हो; इसके पास बैठते ही ठंड दूर हो जायगी, चाहे आँख मूँदकर ही क्यों न बैठें । एक अंधेको भी बाहरसे लाकर यदि यहाँ बिठा देंगे, जो आग देख नहीं सकता, श्रद्धा भी नहीं कर सकता कि आग ऐसी होती है, पर ठंढ उसकी भी दूर होगी । इसी प्रकार भगवान् जहाँ—जहाँ अप्रकट हैं, वहाँके लोग दुःखसे त्राहि—त्राहि करते हैं; पर वे ही लोग यदि संतके पास जा पहुँचें, तो फिर उनको श्रद्धा नहीं करनी पड़ेगी, बिना श्रद्धाके ही, बिल्कुल बिना भावके ही उनका दुःख दूर हो जायगा। अब प्रश्न होता है कि कोई कहे कि 'हमें तो सच्चा संत मिल गया और यदि बिना भावके ही कल्याण होता है तो हमारा क्यों नहीं हुआ ? हमारे मनमें अशान्ति क्यों है ? हमें दुःख क्यों है ?' तो इसका उत्तर यह है कि आप सचमुच ही संतके सम्पर्कमें नहीं आये । नहीं तो, कल्याण हो ही जाता । श्रद्धाकी बिल्कुल ही आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता है केवल सम्पर्कमें आनेकी । आप नहीं आये; इसीलिये आपका दुःख नहीं मिटा। सम्पर्कमें आनेका अर्थ है यह कि आपका मन, आपकी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ एवं बुद्धि तथा शरीर, सब—के—सब उस संतसे जुड़ जायँ, बिना भावके ही जुड़ जायँ । फिर देखो, एक क्षणमें ही आपकी सारी अशान्ति मिट जायगी । आप एक ऊँचे साधकसे भी जुड़ सकते हैं, पर यदि वह भगवत्प्राप्त पुरुष नहीं है, तो उससे जुड़ने पर यद्यपि इस रूपमें भी भगवान् हैं, आपका कल्याण बिना श्रद्धाके नहीं होगा । किन्तु सच्चे संत महापुरुषको बिना जाने, बिना पहचाने, बिना उनपर श्रद्धा किये, पूरा—पूरा उनसे जुड़ जायँ तो फिर

निश्चय ही उसी क्षण कल्याण हो जायगा ।

संक्षेपमें बात यह है कि श्रद्धा होनी और जुड़ना–सम्पर्कमें आना दो वस्तुएँ हैं । किसीमें श्रद्धा होना एवं उससे जुड़ना–ये दो कियाएँ हैं । इसे ऐसे समझें–कल्पना करें, यहाँ दो व्यक्ति बैठे हैं । एक सदाचारी साधक है, दूसरा भगवत्प्राप्त महापुरुष है । अब जहाँ वह साधक आपको दीखता है–वहाँ भी असलमें भगवान् है, पूर्ण रूपसे हैं, पर यहाँ श्रद्धा करनी पड़ेगी कि ये भगवान् हैं तथा उनसे जुड़ना पड़ेगा अर्थात् मन, वाणी, समस्त इन्द्रियाँ आदिको इनसे जोड़ना पड़ेगा, तब आपका कल्याण होगा । पर महापुरुषके लिये यह बात नहीं है । वहाँ श्रद्धा चाहे बिल्कुल ही न हो कि ये भगवत्प्राप्त पुरुष हैं, केवल इन्द्रियाँ–मन–बुद्धि आदि जुड़ जायँ, बस, आपका काम बन जायगा । कोई कहे कि 'हम तो महापुरुषसे जुड़े हुए हैं' तो मैं आपको कसौटी बताता हूँ कि वे जुड़े हैं या नहीं–इसकी जाँच कर लीजिये । मनका जुड़ना–मनका रूप है दिनभर चिन्तन करना, कुछ–न–कुछ संकल्प–विकल्प करते ही रहना । इसका यही स्वरूप दर्शनशास्त्रमें बताया गया है । अब आप सोचें कि आपका मन दिनभरमें कितना संकल्प–विकल्प महापुरुषके सम्बन्धमें करता है और कितना संकल्प–विकल्प उनके अतिरिक्त पदार्थोंसे । आँखका जुड़ना क्या है ? आँख देखती है । दिनभरमें आप कितनी देर उन्हें देखते हैं, उनकी लिखी हुई पुस्तकोंको देखते हैं ? इसी प्रकार समस्त इन्द्रियों एवं बुद्धिकी चेष्टाको औसत पर जाँच लें कि वे किस पदार्थसे जुड़ी हैं ।

जिस दिन किसीका मन वैर–भावसे भी महापुरुषसे सोलहों आने जुड़ जायगा, उस दिन उसका कल्याण हो जायगा; क्योंकि श्रद्धाकी बिल्कुल आवश्यकता ही नहीं है, आवश्यकता है जुड़ने की । श्रद्धाकी वहाँ आवश्यकता होती है, जहाँ भगवान् छिपे रहते हैं । जहाँ प्रकट हैं, वहाँ श्रद्धाकी आवश्यकता बिलकुल ही नहीं है । प्रेमसे या वैरसे किसी प्रकार जुड़ना चाहिये । जुड़ते ही काम बन जाता है । यह ठीक है कि महापुरुषसे वैर–भावसे जुड़ना आदर्श नहीं हो सकता तथा वैर–भावसे जुड़नेवालेको मोक्षरूप ही कल्याण मिलता है, भगवत्प्रेमकी प्राप्तिरूप परम कल्याणकी प्राप्ति महापुरुष–द्वेषीको प्रायः नहीं ही होती । मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि संत बिना श्रद्धाके ही काम कर देते हैं, पर जुड़नेकी आवश्यकता तो होगी ही । यह भी एक परम आश्वासनकी बात है कि जिसका एक क्षणके लिये भी किसी इन्द्रियसे वास्तविक महापुरुषके साथ जुड़ना हो गया; उसका कल्याण हो ही जायगा; क्योंकि धीरे–धीरे उसकी समस्त इन्द्रियाँ जुड़ ही जायँगी और जिस दिन समस्त जुड़ गया कि बस, काम बन गया । यही

महापुरुषकी विशेषता है । स्त्री–बच्चोंसे तो आप अनन्त जन्मोंमें–अनन्त योनियोंमें जुड़ चुके हैं । उन स्त्री–बच्चोंके रूपमें भी स्वयं भगवान् ही थे, पर अभी तक आपका उद्धार नहीं हुआ । उनसे जुड़े भी भीतरी मनसे ही थे, प्रत्येक योनिमें आप जुड़े रहे हैं; पर काम नहीं बना । इसीलिये भगवान्‌की यही अनन्त कृपा जीवपर होती है कि वे अवताररूप तथा संतरूपमें प्रकट हो जाते हैं और उनके प्रकट स्वरूपसे बिना भावके ही जो कोई एक क्षणके लिये भी जुड़ जाता है, उसका कल्याण हो ही जाता है । जुड़ना पूरा–पूरा हुए बिना कल्याणमें देर होती है । चाहे एक जन्ममें हो या एक और जन्म धारण करके, पर यह सर्वथा सत्य है कि महापुरुषसे एक क्षणके लिये जुड़ा हुआ भी आगे चलकर पूरा–पूरा जुड़ ही जाता है तथा उसका पूर्ण कल्याण हो ही जाता है ।

यह मार्ग ही ऐसा है कि इसपर सर्वथा अहंकारशून्य होकर सारी ममता–माया छोड़कर, बस, श्रीकृष्णको ही एकमात्र जीवनका सार–सर्वस्व बनाकर चलना पड़ता है । जबतक बिल्कुल अपनपा मिटा नहीं दिया जाता, तबतक प्रेम प्रकट ही नहीं होता । आप एक भी सच्चे व्रजप्रेमीके जीवनमें भी यह बात नहीं देखेंगे कि उनके मनमें संसार भी हो और श्रीकृष्णप्रेम भी हो। अन्धकार और प्रकाश दोनों साथ रह ही नहीं सकते या तो संसार रहेगा या श्रीकृष्ण रहेंगे ।

श्रीकृष्णकी कृपासे आपके मनमें एक धुँधली चाह उत्पन्न हुई है, पर यह चाह इतनी मन्द है कि इसको बहुत तेजीसे बढ़ानेकी तथा यह सूख न जाय–इसके लिये चेष्टा करनेकी पूरी आवश्यकता है । बात यह है कि जबतक मन श्रीकृष्ण–प्रेम–रससे सिक्त नहीं होगा, तबतक कोई भी वस्तु सदा रहनेवाली शान्ति दे ही नहीं सकती । इसे आप अपने जीवनमें अनुभव करेंगे, पर धीरे – धीरे ।

एक खास बात और है–वह यह है कि आप खूब तेजीसे वैराग्य बढ़ाइये। आपके लिये ही नहीं, किसी भी प्रेम चाहनेवाले साधकके लिये यह आवश्यक है कि विषयोंसे तीव्र वैराग्य तथा मनके द्वारा निरन्तर भगवत्–चिन्तन हो । यह नहीं होगा तथा कोई आपको कहे कि शान्ति मिल जायगी तो समझ लें कि या तो वह कहनेवाला स्वयं भ्रममें है, या जान–बूझकर आपको धोखा दे रहा है । संसारमें जबतक भगवद्‌बुद्धि बिल्कुल स्थिर नहीं हो जायगी, तबतक यदि संसारका तनिक भी चिन्तन होगा तो वह अशान्ति करेगा ही । आगको पकड़कर मनुष्य जले नहीं, यह असम्भव है । इसी तरह संसारको संसारके रूपमें देखते रहनेपर इसके चिन्तनसे जलन बढ़ेगी ही, चाहे आप कहीं भी–किसी भी देशमें चले जायँ । आपको पता नहीं है–शायद वृन्दावनमें रहने वाले भी कई व्यक्ति बहुत अशान्त रहते हैं । जिन्हें वे आँखें प्राप्त नहीं हैं, वे वृन्दावनमें भी जाकर राग–द्वेषसे बचे नहीं